ISSN 2582-0133
साइकिल
बच्चों का दुमहिया
वर्ष 4 अंक 6 फरवरी - मार्च 2022
मूल्य ₹125

वर्ष 4 अंक 6 फरवरी - मार्च 2022

साल	मूल्य	छूट %	मूल्य छूट के बाद	पंजीकृत डाक खर्च	कुल मूल्य
1	750	12	660	245	905 रुपए
2	1500	15	1275	490	1765 रुपए
3	2250	18	1845	735	2580 रुपए

एक प्रति 125 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - आई.सी.आई.सी.आई बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630001028225, IFSC ICIC0006300 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/ektarashop/
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है। भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
ई-1/212, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

जब भी विशेष के बारे में सोचो तो शेष सामने आ जाता है।

कथाओं में भी उसी ने पृथ्वी थामी हुई है।...

तो हम निकले थे पर्यावरण विशेषांक बुनने।

एक भरा-पूरा अंक पर्यावरण का तैयार करने। इस इलाके के जानकार सोपान जोशी इस काम में हमें रास्ता दिखा रहे थे। सामग्री जुटाने में मदद कर रहे थे। कई वजहों से यह तय हुआ कि इस सामग्री को तीन अंकों में फैला दिया जाए। साइकिल में कहानियाँ, कविताएँ आदि नियमित सामग्री का अरमान लिए आए पाठक निराश न लौटें।

इससे सोपानजी का साथ तीन अंकों तक मिला रहेगा।

सुशील

समुद्र का योद्धा व्हेल और हाथी

विक्टर स्मेटाचेक
चित्रः तापोशी घोषाल

मेरा जन्म और बचपन कुमाऊँ के भीमताल कस्बे का है। उस समय यह उत्तर प्रदेश में आता था। आज उत्तराखण्ड में है। चारों तरफ पहाड़ थे, हिमालय की तलहटी के घने जंगल थे। इनमें घूमना मुझे भाता था। पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, तरह-तरह के पेड़-पौधों के बीच घूमते हुए मैंने होश सम्भाला। यही मेरी दुनिया थी। प्रसिद्ध प्रकृति प्रेमी जिम कॉर्बेट का कुमाऊँ से गहरा सम्बन्ध था। उनकी किताबें पढ़ता था और सोचता था कि जीवन ऐसे ही जीना चाहिए। मैं वन विभाग में भर्ती होने के सपने देखता था। घर में प्रकृति और जीव-जन्तुओं पर कई किताबें थीं। इन्हें मैं रात को बड़े ध्यान से पढ़ता था। माँ-पिता मेरी रुचि को बढ़ावा ही देते थे।

मेरी माँ ओडीशा से थीं, पिता जर्मनी के पहाड़ों से थे। वे जहाज़ों में नाविक बन गए थे। एक यात्रा पर वे हिन्दुस्तान आए और यहीं के होकर रह गए। 1964 के आसपास एक बार जर्मनी से कुछ लोग घर आए। मैं उन्हें जंगल घुमाने ले गया। लौटते हुए उन्होंने पूछा कि वे छात्रवृत्ति दें, तो क्या मैं जर्मनी में पढ़ना चाहूँगा। न जाने उन्हें क्या लगा! मैंने भी यूँ ही 'हाँ' कह दिया। तब मैं 18 बरस का था, जीवशास्त्र में बी.एस.सी. पूरी कर चुका था। तितलियों और पक्षियों को देखने में, समझने में खूब रस आता था। उस समय मैंने एक लेख लिखा था कि निचले गर्म इलाकों के पक्षी पहाड़ों पर ठण्डी जगहों में आने लगे हैं। इससे लगता था कि गर्मी बढ़ रही है।

दो-एक महीने में जर्मनी से छात्रवृत्ति की चिट्ठी आ गई। साथ में आए फॉर्म को पिता भरने लगे। उसमें सवाल था कि क्या मैं जर्मन भाषा जानता हूँ। हम घर में हिन्दी और अँग्रेज़ी ही बोलते थे। फिर भी
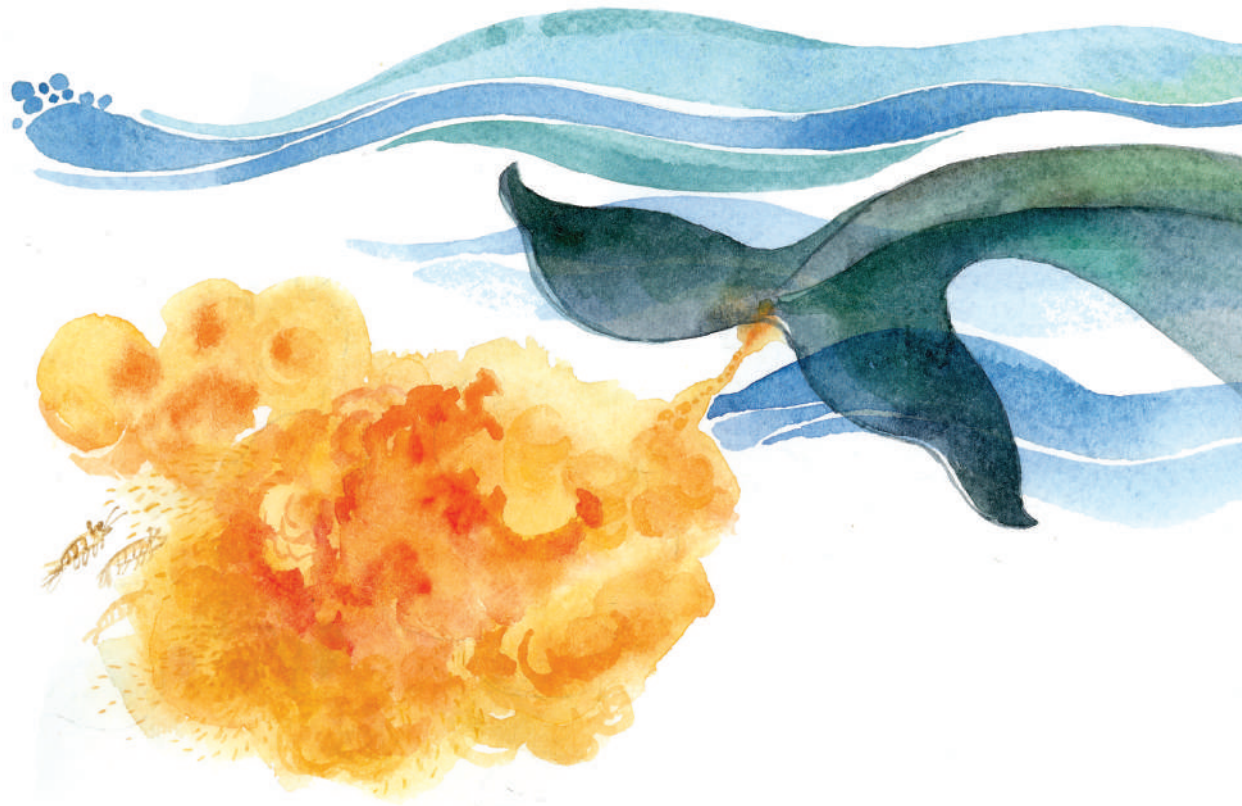
उन्होंने 'हाँ' लिख दिया। सोचा था इस सब में साल-दो-साल लगेंगे। पर वहाँ से फटाक से दाखिले की चिट्ठी आ गई। महीने भर के भीतर मुझे जर्मनी आने के लिए कहा गया था। जैसे तैसे दो महीने में मैंने जर्मन सीख ली।

वहाँ मुझसे मेरी पढ़ाई का विषय पूछा गया था। मैंने समुद्र विज्ञान कह दिया। क्यों? पिताजी समुद्र के रास्ते दुनिया घूम चुके थे। पर एक और कारण था। मैंने कहीं एक लेख पढ़ा था कि भविष्य में बढ़ती आबादी के लिए भोजन समुद्र से ही मिलेगा। उस समय हमारे देश में अनाज की, भोजन की बड़ी तंगी थी। मुझे लगा कि समुद्र की पढ़ाई से पर्याप्त भोजन पाने के रास्ते खुलेंगे। वही भर दिया।

डिप्लोमा करने के बाद 1970 में पाँच महीने की छुट्टी पर घर आया। उस समय नैनीताल के जंगलों में हाथी का उत्पात बढ़ गया था। कई गाँव वालों पर और वन विभाग के कर्मचारियों पर हाथियों ने हमला किया था। वन विभाग द्वारा बताए पागल हो गए हाथियों को मारने का काम मेरे कुछ परिचितों को सौंपा गया। उस समय शिकार खेलने का चलन खूब था। मैं भी शिकार करता था। उनके बुलावे पर मैं भी गया। जिस हाथी को मारा उसका दाँत भीतर से सड़ रहा था। ज़ाहिर है, दर्द ने उसे पागल कर दिया था। यह देख मुझे बड़ा बुरा लगा कि किसी बीमार को मारना पड़ा!

हाथियों के उत्पात का कारण मुझे बाद में समझ आया। तराई के घास के मैदान साफ कर वन विभाग सागवान के पेड़ लगा रहा था। सागवान से महँगी और बिकाऊ लकड़ी मिलती है। घास हाथियों का प्रिय भोजन है। तो जब उनका भोजन हटाया गया,

तो वे उन खेतों में आने लगे जहाँ तरह-तरह की घास उगती थीं। धान और गेहूँ भी तो घास की ही प्रजातियाँ हैं! यानी हाथी हमारे बहुत पहले से घने जंगलों को खोल के, पेड़ों को गिरा के, घास के मैदान बनाता आया है। हाथी भी खेती-बागवानी करते हैं! पूर्वी अफ्रीका के जिन घास के मैदानों में हमारी प्रजाति का जन्म हुआ, वे हाथियों के बनाए हुए ही थे। यानी जिस बाग-बगीचे में मनुष्य पैदा हुआ है, उसका 'माली' हाथी ही था।

चीज़ों को देखने का यह तरीका मेरे बड़े काम आया। तब तक मैं समुद्र वैज्ञानिक हो गया था। समुद्र की लहरों पर पानी के जहाज़ों पर सवार मैं समुद्रीय जीवों पर शोध करता था। खासतौर पर उन बारीक प्लवक या प्लैंकटन पर जिन पर समुद्र का सारा जीवन चलता था। प्लैंकटन का आकार-प्रकार समझता था। सागर में लोहे की कमी होती है। लोहा

पानी में घुलता नहीं है। पर सभी जीवों को लोहे की ज़रूरत तो होती है। लोहे से ही हमारा खून लाल होता है, जो लोहे का रंग है।

फिर समुद्रीय जीव लोहा कैसे पाते हैं? मुझे अचानक एक दिन लगा कि जैसे जंगल का 'माली' हाथी है, वैसे ही कहीं समुद्र का 'माली' व्हेल तो नहीं! व्हेल की सबसे बड़ी प्रजातियाँ अपने कँघी जैसे दाँत में फँसा के 'क्रिल' नामक छोटे-छोटे झींगों का शिकार करती हैं। पिछले दो सौ साल में मनुष्य द्वारा व्हेल का शिकार बढ़ता ही गया है। कई व्हेल प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर हैं। अगर शिकारी मिट रहा हो, तो शिकार के वारे न्यारे होने चाहिए। किन्तु यहाँ तो उलटा था! व्हेल के साथ क्रिल की आबादी भी तेज़ी से घट रही थी।

यह अचरज की बात थी! शिकारी के मिटने से शिकार भी मिट रहा था! ऐसा लगा कि क्रिल को व्हेल से कुछ-न-कुछ मिलता होगा। यहाँ मुझे लोहे की बात याद आई। धीरे-धीरे शोध से साफ हुआ कि व्हेल के गोबर में समुद्रीय जीवों को लोहा मिलता है। वह भी ऐसे रूप में जिसका वे इस्तेमाल कर सकें। व्हेल के गोबर से प्लवक पनपते हैं, जिन्हें क्रिल खाते हैं। यानी व्हेल समुद्रीय जीवों के लिए भिलाई जैसा लोहे का कारखाना तो है ही, वह रेलगाड़ी भी है जो जीवन का लोहा दूर-दूर तक पहुँचाती है!

समुद्र कुमाऊँ के उन जंगलों से बहुत दूर है जिन में मेरा बचपन बीता। लेकिन समुद्र में काम करते समय भी मेरा जंगल का अनुभव काम आता रहा। आजकल मेरा मुख्य काम जलवायु परिवर्तन से जुड़ा है। उसके नुकसान कम करने के तरीके खोज रहा हूँ। इसके तरीके अलग-अलग हो सकते हैं। किन्तु उनका मूल विचार तो प्रकृति से ही निकला है। ऐसे तरीके निकालना जिनसे प्राकृतिक जीवन का वैभव लौट आए।

अगर समुद्र में व्हेल बढ़ते हैं, तो उनके गोबर में लोहा पाने वाले प्लवक बढ़ेंगे। इनसे क्रिल बढ़ेंगे। समुद्र से मार-मार के जो जीवन हमने निकाल लिए हैं, उनके लौटने से बिगड़ा हुआ सन्तुलन लौट सकता है। हमारी पृथ्वी का 70 फीसदी हिस्सा समुद्र से ढँका है। इसमें जीवन समृद्ध हुआ तो वह बड़ी मात्रा में हवा से कार्बन डाइऑक्साइड निकाल लेगा जिसकी वजह से जलवायु में परिवर्तन हो रहा है।

जंगल में हाथी और समुद्र में व्हेल को बचाने से केवल ये और पर्यावरण ही नहीं बचेगा। हम भी बचेंगे। क्योंकि हम हैं ही हाथी और व्हेल जैसे मालियों के बागीचे में पनपे हुए प्राणी!

काला अलगोज़ा

नेहा सिंह
चित्रः प्रिया कुरियन

जैसलमेर के किले से भी बहुत दूर थार के रेगिस्तान में शकूर अलगोज़ेवाला रहा करता था। कहते हैं कि उसके अलगोज़े की धुन सुन-सुनकर ही रेत यहाँ वहाँ उड़-उड़कर ऊँचे-नीचे टीले बनाया करती थी। सूरज भी अलगोज़े के मध्यम और तीखे सुरों पर नरम और सख्त हुआ करता था।

शाम होते-होते देश-विदेश के लोग शकूर का अलगोज़ा सुनने रेत के टीलों पर, कभी ऊँटों पर सवार तो कभी पैदल ही धँसते-धँसते चले आते थे। अलग-अलग यात्राओं में वो शकूर का संगीत कैद करते थे कि फिर ऐसा संगीत दुनिया में और कहाँ नसीब होगा। शकूर मुस्कराकर उनसे कहता कि संगीत उसकी उँगलियों से बजता ज़रूर है पर उसे बजाने वाला तो कोई और ही है। कई विदेशी ज़ोर ज़बर्दस्ती कर उसे अपने देश ले जाते पर कुछ ही दिनों में उसे अपने रेगिस्तान और अपनी बेटी मोरकी की याद सताने लगती और वो वापस आकर ही चैन की साँस लेता। मोरकी शकूर के लौटने की खुशी में उसकी पसन्द का लाल मांस और बाजरे का मोटा रोटा बनाती। दोनों ठण्डी-ठण्डी रेत पर बैठ खाना खाते। और देर तक टूटे तारों को ताकते।

ऐसे ही एक दिन सात समन्दर पार कर एक राहगीर जलती रेत को पार कर चलती हुई शकूर का संगीत सुनने आ पहुँची। ना वो शकूर की बोली बोलती थी, ना ही शकूर उसका। पर दोनों पूरे दिन और शाम भर काले अलगोज़े के संगीत से ही एक दूसरे से बतियाते रहे।

मोरकी सुबह से शाम कभी उनके लिए पानी, कभी चाय, कभी छाछ और कभी प्याज़ और मिर्ची भरी खट्टी कढ़ी लाती रही।

राहगीर ने कई बार मोरकी को इशारे से पास बैठने को कहा पर मोरकी हर बार शरमाकर भाग जाती और घर के अनगिनत काम सँभालती रहती। रात का आठवाँ टूटा तारा देख शकूर सोने के लिए जाने लगा तो राहगीर ने अपने झोले में से कई तरह के रंग निकालकर इशारे से पूछा, "अगर आपको एतराज़ ना हो तो आपके घर की दीवार पर चित्र बनाना चाहती हूँ।" शकूर ने मुस्करा कर हामी भर दी।

मोरकी काफी देर तक राहगीर को ताकती रही फिर सोने चली गई। पर राहगीर माथे पर टॉर्च लगाए पूरी रात रंगों से जादू करती रही।

सुबह-सुबह बहुत उत्सुकता से शकूर ने बाहर आकर देखा तो राहगीर जा चुकी थी। बचा था सिर्फ उसका बनाया चित्र।

शकूर को कुछ पल तो समझ नहीं आया कि ये सब क्या है। चित्र को देखकर उसके अन्तस में अजीब-सी मरोड़-तोड़ क्यों हो रही है।

शकूर मुँह लटकाकर घर में घुसा।

अब्बू का चेहरा देख मोरकी भी बाहर आई। चित्र देखकर कुछ पल के लिए वो बुत-सी बन गई। पहले तो उसे यकीन नहीं हुआ कि ये उसी का चित्र है। जब यकीन हुआ तो और उलझन में पड़ गई।

राहगीर ने उसका चित्र क्यों बनाया था!

उसी के बाल, उसी की छोटी-छोटी काली आँखें, उसी की ठुड्डी, उसी के धूप से जले गाल, उसी की पतली-पतली उँगलियाँ और उनमें अब्बू का काला अलगोज़ा।

मोरकी ने धीरे-से अपने चित्र को छुआ। उसे लगा कि जितने गौर से राहगीर ने उसे देखा था, ऐसे तो किसी ने आज तक नहीं देखा। उसके होंठों पर एक धीमी-सी मुस्कान बिखर गई। पर राहगीर ने उसके हाथों में अलगोज़ा क्यों थमाया! कोई पागल-वागल थी क्या!

मोरकी हँसती हुई अन्दर आई और बोली, "कितनी पागल राहगीर थी। मेरा चित्र, वह भी अलगोज़े के साथ। मैंने तो आज तक अलगोज़े को हाथ भी नहीं लगाया।"

पर अब्बू ने बस अपना अलगोज़ा उठाया, बाहर आ चित्र की तरफ पीठ करके बजाने लगा। आज मोरकी को उसके संगीत में कुछ कम मिठास लगी।

"आपकी बेटी भी अलगोज़ा बजाती है?"

"क्या नाम है इसका?"

"क्या तुम भी अलगोज़ा बजाना सीखोगी?"

शाम वाले पर्यटक आज ऊलजलूल से सवाल कर रहे थे। शकूर का संगीत और तीखा और बेजान-सा हुआ जा रहा था।

सबके जाते ही शकूर ने कोठरी से गेरुआ रंग निकाला। पानी में घोला और मोरकी के चित्र पर बेतहाशा वार करता रहा। मोरकी खड़े-खड़े देखती रही। उसके भूरे सुनहरे बाल, छोटी-छोटी काली आँखें, धूप से जले गाल और पतली उँगलियाँ और उनमें काला अलगोज़ा, सब धीरे-धीरे ओझल हो गए। बचा सिर्फ सख्त, ठण्डा गेरुआ।

मोरकी ने अब्बू की आँखों में देखा। दोनों की आँखों से मोटे-मोटे आँसू टपके और रेत में खो गए। मोरकी देर तक ठण्डी रेत में जमी खड़ी रही जैसे चाह रही हो कि रेत उसे अपने अन्दर समा ले।

शकूर बोतल भर दारू पीकर सो गया और मोरकी बहुत रात तक बौखलाई-सी उस गेरुई दीवार पर अपना चित्र खोजती रही।

सुबह शकूर उठा तो मोरकी को कहीं नहीं पाया। रेत के समन्दर में वो उसे दूर-दूर तक पुकारता रहा, "मोरकी...मोरकी।" पर जवाब में सिर्फ रूखी हवा की साँय-साँय ही मिली।

मोरकी फिर उस घर में कभी नहीं लौटी।

कहते हैं कि मोरकी अब भी जैसलमेर के किले के अन्दर कभी किसी सच्चे मुरीद को दिखाई दे जाती है, काला लहँगा पहने, काला अलगोज़ा बजाते। कभी किसी रात जब मोरकी का मन बहुत खुश होता है तो वो रात में किले की सबसे ऊँची दीवार पर बैठ अलगोज़ा बजाती है।

सुबह जब लोग उठते हैं तो उनकी आँखें भीगी होती हैं। और कानों में मोरकी के काले अलगोज़े की आवाज़ गूँज रही होती है। मोरकी का संगीत किसी यंत्र में रिकॉर्ड नहीं हो सकता। पर सुनने वाले कहते हैं कि ऐसा संगीत दुनिया में और कहीं नहीं मिल सकता!
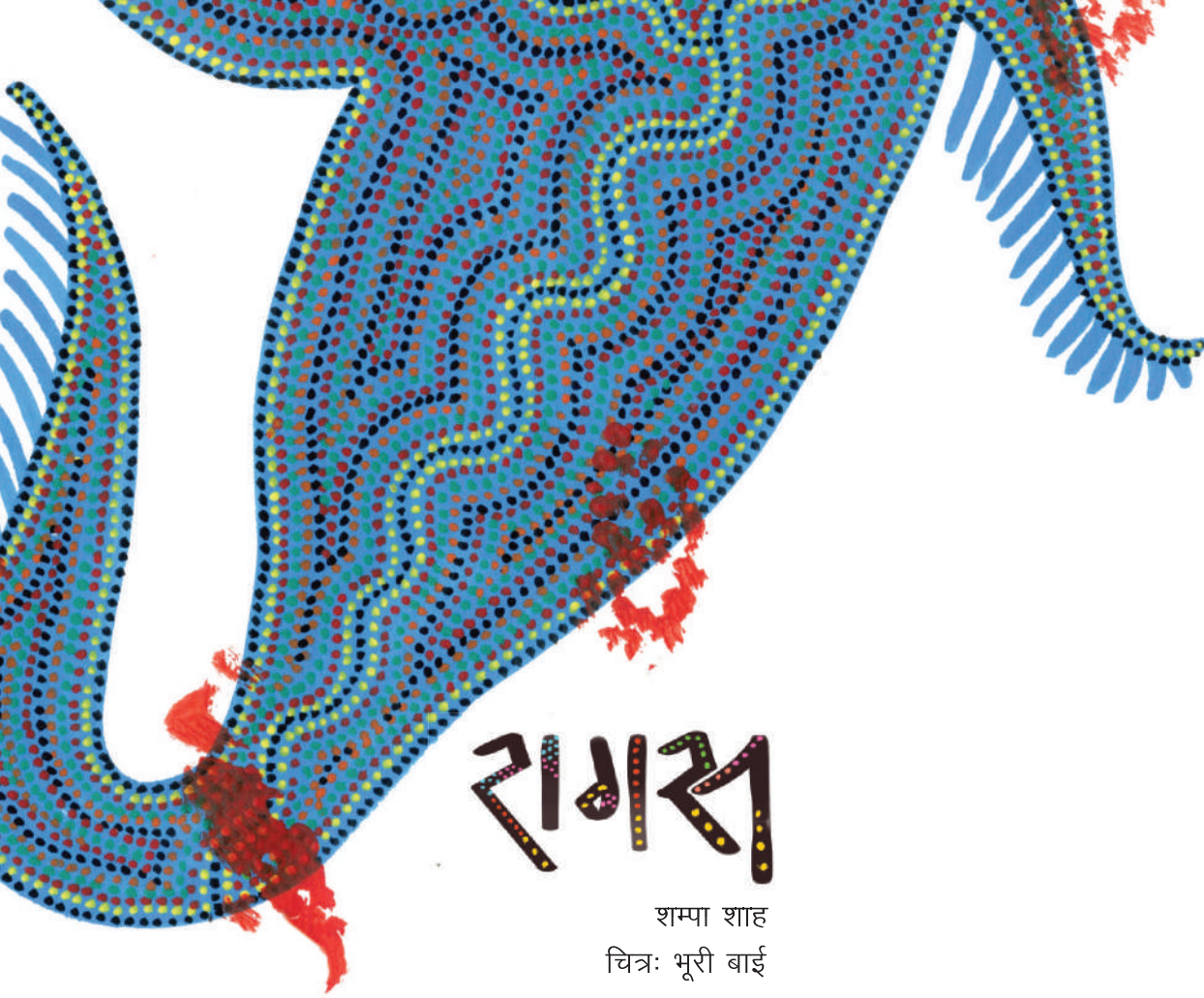
रागस

शम्पा शाह
चित्रः भूरी बाई

एक बार हमारी यह दुनिया पूरी की पूरी पानी में डूब गई थी। गाँव, शहर, मकान, सारे लोग, सब के सब डूब गए थे। सिर्फ पावागढ़ नाम के पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पानी से अपना सिर निकाले खड़ी थी और उस चोटी पर एक उड़न खाटली थी जिस पर...

पहले मुझे भी कहाँ पता थी यह कहानी? इसे तो मैंने रमेश और गुल्ली के लड़के की शादी में सुना। जब हम सब घराती और बराती खा-पी कर बैठ गए थे। तब भील समुदाय की पुरानी रीत के अनुसार, घर के एक सयाने दद्दा ने हम सब को यह कहानी सुनाई जिसे अब मैं तुम्हें सुनाती हूँ...

बहुत पुरानी बात है। एक बार धरती पर भयानक सूखा पड़ा। बारह बरस तक पानी की एक भी बूँद नहीं बरसी। नदियाँ, तालाब, कुएँ, बावड़ी सब के सब एक-एक कर सूखते गए। ऐसे में खेतों में फसल कैसे उगती? घास का एक हरा तिनका न बचा। जंगल सूख गए। लोग खाते तो क्या खाते? गाय, बकरी, गौरैया, मैना, बच्चे, बूढ़े सब भूख से तड़पते मर रहे थे।

तभी किसी ने बताया कि समन्दर में समन्दर जितनी ही बड़ी एक रागस मछली है। सारे लोग छुरी और डलिया लेकर समन्दर की ओर चल पड़े।

मेघनगर में रहने वाले दितिया और ग्यारसी ने भी वहाँ की राह पकड़ी। समन्दर पर पहुँचे तो उस विराट रागस मछली को देखकर दंग रह गए। समन्दर की ही तरह उसका ओर-छोर नहीं था। लेकिन, उसके पूरे शरीर पर घाव ही घाव थे। हर जगह से खून बह रहा था। लोग उसकी बोटी-बोटी काटते जा रहे थे। इसके बावजूद वह ज़िन्दा थी। वह बिना हिले-डुले, उदास आँखों से सबको देख रही थी। जब ग्यारसी और दितिया ने रागस मछली का यह हाल देखा तो वे बोले, "इस तरह ज़िन्दा मछली को काट-काट कर हम कैसे खा सकते हैं?" उन्होंने रागस मछली को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और घर की ओर लौट चले।

तभी उनके कानों में आवाज़ पड़ी, "अरे! क्यूँ जा रहे हो तुम दोनों? देखते नहीं मैं कितनी बड़ी हूँ? मेरा एक हिस्सा खाकर तुम्हारी जान बच जाएगी। जो सब कर रहे हैं तुम भी वैसा ही क्यों नहीं करते?" यह रागस मछली की आवाज़ थी जो उन्हें वापस बुला रही थी। ग्यारसी और दितिया ने हाथ जोड़ दिए। बोले, "हमसे नहीं होगा। तुम बहुत बड़ी हो लेकिन दर्द तो तुम्हें भी होता होगा। फिर एक दिन तो सभी को मरना है। हम जंगल में जाकर कन्द ढूँढने की कोशिश करेंगे।"

रागस मछली की आँख से आँसू टपकने लगे। कोई अपने मरने की चिन्ता छोड़ उसके दर्द के बारे में सोच रहा था! वह बोली, "तुम्हारे भीतर इतनी करुणा है इसीलिए तुम्हें एक बात बताती हूँ। आज से ठीक तीन दिन बाद मैं अपनी पूँछ पलटूँगी। पूरी धरती पर पानी ही पानी फिर जाएगा। तुम दोनों लोहार से एक उड़न खाटली बनवा लो। उस पर बैठकर तुम्हारी जान बच जाएगी।"

ग्यारसी और दितिया लौट आए और उन्होंने वही किया जैसा रागस मछली ने कहा था। तीसरे दिन धरती पर भयानक तूफान उठा और सारी धरती पानी में डूब गई। बचे तो सिर्फ उड़न खाटली में बैठे ग्यारसी, दितिया, उनके मुर्गा-मुर्गी और ग्यारसी के ताबीज़ में बन्द मक्के का एक दाना।

जब धीरे-धीरे पानी कम हुआ तो धरती फिर से

ऊपर आई। ग्यारसी और दितिया के बच्चों और फिर उनके बच्चों से ही दुनिया की सारी जातियाँ बनीं। मुर्गा-मुर्गी ने सारे जानवरों को जन्म दिया और मक्के के दाने से सारे पेड़-पौधे जन्मे।

कहानी सुनाने वाले दद्दा बोले, "हम सब जो आज इस शादी में इकट्ठा हो यह कहानी सुन रहे हैं, ग्यारसी और दितिया के ही बच्चे हैं। वे हमारे पूर्वज देवता हैं। उनकी करुणा के कारण ही हम बच पाए। मनुष्य जाति बच पाई। इसीलिए आज ब्याह के अवसर पर हम उन्हें प्रणाम करते हैं।"

यह कहानी सुने हुए बहुत समय हो गया है फिर भी, वह अकसर याद आती रहती है। दुनिया में सब तरह के लोग होते हैं। एक तरफ वे तमाम लोग जो रागस मछली का बड़े से बड़ा टुकड़ा काट कर ले जा रहे थे और दूसरी ओर दितिया और ग्यारसी, जिनसे मछली का दर्द देखा नहीं जा रहा था। अभी कुछ रोज़ पहले मैं सुबह की सैर से लौटते हुए एक चाय के ठेले पर चाय पीने बैठी थी। देखा चायवाले ने मुझे चाय देने के पहले ज़मीन पर एक गिलास पानी डाला और फिर एक कप चाय डाली। जब मैंने उससे ऐसा करने का कारण पूछा तो बोला, "दिन की पहली चाय तो धरती माँ को ही देते हैं।"

शिल्पः शम्पा शाह

उसने पहले धरती पर एक गिलास ठण्डा पानी इसीलिए डाला होगा ताकि धरती गरम चाय से जल न जाए!

उस सुबह इस पूरी घटना ने मन को एकदम हलका और खुश कर दिया था। तभी देखा लाठी टेकते एक दादाजी और उनकी छोटी-सी पोती चींटियों के बिल के पास आटा डाल रहे हैं। याद आता है कि कभी शाम को पैदल टहलने निकलो तो कॉलोनी के कई घरों में आज भी तुलसी के पौधे के पास या किसी पीपल के नीचे दीया जलता हुआ दिखता है। धरती की, चींटी की चिन्ता करने वाले आज भी हैं। दितिया और ग्यारसी के मन में उस रोज़ उपजी करुणा आज भी हमारे भीतर कहीं किसी कोने में बची हुई है।

सोचती हूँ, आज मैं भी रागस मछली, ग्यारसी और दितिया के लिए एक दीया जलाऊँगी।

1 दो मर्तबान हैं और 100 सफेद और 100 काले पत्थर। सारे पत्थरों को दोनों मर्तबानों में डाल दो। आँख बन्द कर लो। तुम्हारे सामने कोई एक मर्तबान रखा जाएगा जिससे तुम एक पत्थर निकालोगे। काला पत्थर हाथ आया तो जीत तुम्हारी। तुम किस तरह दिए पत्थरों को मर्तबानों में बाँटोगे कि तुम्हारे जीतने के चाँस बढ़ जाएँ।

2 तुन्मम्हादिरेन दोफस्तोंर मेंव सेरी किमेंसआ काता जहै?
इस वाक्य को डीकोड करो।

3 एक वृत्त को 8 टुकड़ों में बाँटना है लेकिन सिर्फ तीन कट लगा कर।

4 81 x 9 = 801
इसे कैसे साबित कर सकते हैं?

5 लोग अकसर कहते हैं, "इनसे बचकर रहो। दूरी बनाकर रखो। इनसे ज़्यादा मतलब मत रखो।" लेकिन इनसे बात करो या उन्हें जानने लगो तो वो, वो नहीं रहते। ये कौन लोग हैं?

6 हम तीन बच्चे माँ के चारों तरफ, एक के पीछे एक, भागते रहते हैं। हम कितना भी तेज़ भाग लें कभी एक दूसरे को छू नहीं पाते।

7 क्या साफ करने में गन्दा हो जाता है?

8 गंगा में किस तरह के पत्थर मिलते हैं?

9 222222222 पर घर के बाहर मिलते हैं। पर्ची पढ़ते ही रोहन समझ गया। तुम समझे?

1. एक मर्तबान में एक काला पत्थर और दूसरे में बाकी सारे पत्थर डाल दें। इससे जीतने के चाँस 74.4 प्रतिशत बढ़ जाएँगे। 2. तुम्हारे दोस्तों में से किस का जन्मदिन फरवरी में आता है? 4. इसे पलट दें 108 = 6 x 18 5. अजनबी 6. पंखे के तीनों ब्लेड 7. पानी 8. गीले 9. 22:22 22/2/22

चिड़िया किसे दिखती है!

गज़ाला शहाबुद्दीन
चित्रः प्रोइति राय
अनुवादः निधि गौड़

मैं कोई छह साल की थी जब मैंने पहली बार लिखा। एक तोते पर। वो दिखता कैसा है, उसकी चोंच, रंग वगैरह वगैरह। मुझे याद है हमारे घर एक किताब हुआ करती थी 'फैमिली फन एंड गेम्स'। हम सब उसे जब तब पढ़ते रहते थे। चिड़ियों को देखने का चस्का मुझे वहीं से लगा। मैं अपने बगीचे में उन्हें खूब ध्यान से देखती। जैसे ही मैंने लिखना सीखा देखे हुए को कॉपी में दर्ज करने लगी।

पापा घूमने-फिरने के बेहद शौकीन थे। उनकी सरकारी नौकरी से मिली तनख्वाह जितनी इजाज़त देती उतना तो घूम ही लेते। अभयारण्य, पहाड़, बगीचे, दिल्ली के स्मारक, चिड़ियाघर हमने कौन-सी जगह नहीं छानी थी। हर बार मैं खुद को प्रकृति के और करीब पाती। मुझे याद है 1980 में मैंने भरतपुर में साइबेरियन सारस देखे थे। सारस फिर वहाँ नहीं लौटे।

हाई स्कूल तक आते-आते बर्ड वॉचिंग की बारीकियों से मैं वाकिफ हो चली थी। मेरे टीचर कौशल्या रामदास एक दोपहर हमें डियर पार्क ले गए। मैं सालिम अली की किताब 'बुक ऑफ इंडियन बर्ड्स' पढ़ चुकी थी। इस किताब से जिस पहली चिड़िया को मैंने पहचाना वो थी फुदकी (Ashy Prinia)। दिल्ली की सबसे चुलबुली लचीली चिड़िया। अब तो इस किताब के बिना मेरा काम ही न चलता।

फिर तो मैं इस रास्ते पर चल पड़ी। मैं अपने आसपास की चिड़ियों को एक-एक कर पहचानने लगी। हर बार मेरी खुशी दूनी चौगुनी हो जाती। छोटी पर जोशीली दर्ज़िन मोगरे पर ज़ोर-ज़ोर से चिचियाती। मैना बगीचे में पानी में छपछपाने आती। गिद्ध (white-backed vulture) दिनभर शिकार की तलाश में अर्जुन के पेड़ों पर बैठा रहता। शकरखोरा (Purple sunbird) हर बसन्त दिनभर सहजन के पेड़ के तीखे-मीठे फूलों का रस लेने आती रहती। गर्मियों की लम्बी दोपहरों में जब सब सो रहे होते तब कूकुआती कोयल खुश कर देती। हर सुबह सतभाइयों (jungle babblers) का शोर मचाते हुए पड़ोस की बिल्ली के पीछे पड़ जाना। और सर्दी की धुपहरियों में चिड़ियाघर से आती प्रवासी बत्तखों और कलहंसों की मिलीजुली आवाजें!

बड़े होकर मैं दिल्ली की स्वयंसेवी संस्था कल्पवृक्ष से जुड़ी। वहाँ एक से एक पक्षी-प्रेमियों का संग-साथ मिला। हम सभी की जंगल में पक्षी देखने में दिलचस्पी थी। हम कई अभ्यारण्यों में घूमे। हर सर्दियों और गर्मियों में दिल्ली की चिड़ियों की गिनती की।

इकोलॉजिस्ट बनी। प्रकृति और पक्षियों के लिए प्रेम ने इस काम को मेरे लिए चुना। मैं यही तो करना चाहती थी। पर मैंने राष्ट्रीय उद्यानों में बाघ जैसे बड़े स्तनपाइयों के साथ काम नहीं किया। मैंने हिमालय की चिड़ियों पर काम किया। पक्षियों के लिए यह एशिया का सबसे समृद्ध ठिकाना है। वहाँ खेती में लगे लोगों और पक्षियों का अद्‌भुत साथ रहा है। पर अब सब कुछ तेज़ी से बदल रहा है। लोग बदलते मौसमों और पानी की कमी की मार सह रहे हैं।
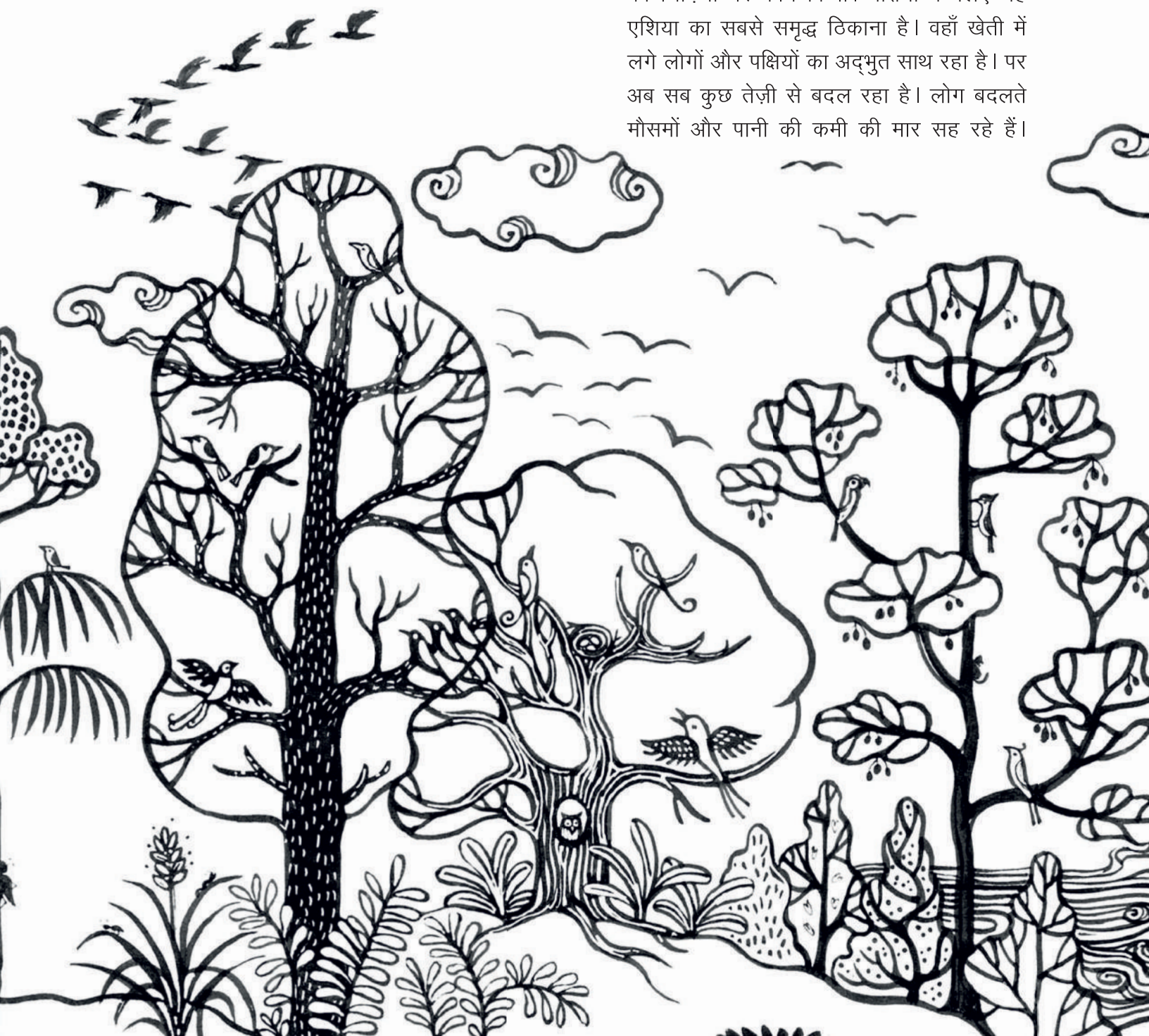
तापमान बढ़ रहा है। जंगलों में पक्की सड़कें और बाँध पाँव पसार रहे हैं। जंगल झीना होता जा रहा है।

मेरी दिलचस्पी यह जानने में है कि पहाड़ी पक्षी इन बदलावों का सामना कैसे कर रहे हैं। जब जंगल कट रहे हैं, छितर रहे हैं, आग में खाक हो रहे हैं, लकड़ियों के लिए काटे जा रहे हैं। मौसम में आ रहे बदलावों का उन पर क्या असर हो रहा है? कौन-से पक्षी पर्यावरण की इस मार को झेल पाएँगे? कौन-से खत्म हो जाएँगे? ऐसे में हम क्या कर सकते हैं? पक्षियों की प्रजातियों की संख्या जंगलों की सेहत पर टिकी है। जंगल फलेगा-फूलेगा तो पक्षियों के खाने के लिए ज़्यादा कीड़े-मकोड़े, फूल और फल रहेंगे। हिमालय के कुछ दुर्लभ पक्षी जैसे, मुनाल, satyr tragopan, black-breasted parrotbill, rufous-bellied woodpecker, the spotted nutcracker, maroon oriole, the Koklas pheasant, European jay, the rufous-chinned laughing thrush और the brown wood owl आज कम से कमतर होते जा रहे हैं। उनके घरों पर डाका डल गया है। मौसम में बदलाव के चलते कुछ पक्षी अपने ठिकानों को छोड़ ऊँची जगहों पर रहने लगे हैं। इन नई जगहों के हिसाब से क्या यह खुद को ढाल पाएँगे?

एक तरह से पक्षियों के ज़रिए हम समझ सकते हैं कि इंसानी दखलअन्दाज़ी से यह दुनिया कितनी बदल गई है। पक्षियों के रहवास बरबाद हो जाएँगे तो वो सब भी खत्म हो जाएगा जो जंगल का पर्यावरण हमें देता है। जैसे, साफ पानी, तापमान नियंत्रण, उर्वर मिट्टी। अगर हमारे इलाके में कुछ चिड़ियों का आना-जाना, उनका दिखना बन्द हो जाए तो यह एक तरह की चेतावनी है कि सब कुछ ठीक नहीं है। हमें इनके ठौर-ठिकानों को फिर दुरुस्त करने के लिए कड़े कदम उठाने होंगे।

मैंने चिड़ियों से बहुत सीखा है - एक इंसान के बतौर भी और एक इकोलॉजिस्ट के बतौर भी। सभी को पक्षियों के साथ का सुख मिले इसी चाह में मैं उत्तराखंड की कई संस्थाओं से (तितली ट्रस्ट और उत्तराखंड फॉरेस्ट डिपार्टमेंट) जुड़ी हूँ। हम गाँव के युवाओं को पक्षियों को पहचानना सिखाते हैं। जिससे वो बेहतर गाइड बन सकें। लोगों की ज़िन्दगी पक्षियों के सहारे चले इससे बढ़कर और क्या होगा। जब चिड़िया को देखते हैं तो सिर्फ चिड़िया नहीं दिखती। पेड़, हवा, पानी, आसमान, मिट्टी पहाड़ पर भी नज़र अटकती है। उसके बारे में भी सोचते हैं। विचारते हैं। उन्हें बचाने की ओर भी एक कदम उठता है। और यह होता दिख भी रहा है। इनमें से कुछ लोग पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर बढ़ चढ़कर काम कर रहे हैं। जंगलों और उनके आसपास को बचाने में लगे हैं।

चिड़ियों को देखना ध्यान में बैठने जैसा है। जब मैं एक चिड़िया को देखती हूँ तो उसके पंखों की बुनावट, उसके रंग, उसकी चाल ढाल सब को देखती हूँ। मंत्रमुग्ध हो जाती हूँ। पेड़ों पर, झाड़ियों में वो किस सफाई से उतरती है। उसका एक भी पंख इधर का उधर नहीं होता। चिड़ियों को देखते हुए मैं इतना खो जाती हूँ कि बाकी सब गैर ज़रूरी लगता है। चाहे कुछ देर के लिए ही सही।

राघवेन्द्र गडगकर
चित्रः अतनु राय, नीलेश गहलोत

कुछ दिन पहले क्या शानदार पर्चा पढ़ने को मिला! अफसोस भी हुआ कि इसे मैंने क्यों नहीं लिखा। मैंने क्या पिछले सौ सालों से किसी ने भी इस पर लिखा क्यों नहीं। कौन है जिसने हर दिन कुत्तों को गलियों में मारे-मारे फिरते न देखा हो। पर सलीके से उन्हें देखना, उनकी हरकतों पर नज़र रखना, उन्हें दर्ज करना किसी से न हो सका। खैर, तब न हुआ, अब हुआ।

इस पर्चे ने एक और पुरानी याद ताज़ा कर दी। कोई पचासेक साल पुरानी बात। तब मैं बैंगलोर में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में रहते एक ततैये (इंडियन पेपर वास्प) पर काम कर रहा था। बैक्टीरिया और वायरस के आपसी रिश्तों को जान समझ रहा था। उन दिनों मशहूर इकोलॉजिस्ट माधव गाडगिल और उनके छात्रों से लगातार मिलना-जुलना होता रहता था। वे पास के बाँदीपुर टाइगर रिज़र्व में चीतलों पर काम कर रहे थे। उन्हीं दिनों उनका एक पर्चा बाँदीपुर में एक साल छपा।

मुझे उनका वो प्रोजेक्ट बहुत दिलचस्प लगा जिसमें देखा जा रहा था कि चीतल सारा दिन क्या-क्या करते हैं। उन्होंने कुछ चीतल पहचान कर उनकी हर हरकत पर निगाह रखी। जब तक कि वो

नज़र से गायब न हो गए। दिन भर में कोई 6500 हरकतों को नोट किया गया। इनसे चीतल के दिनभर का लेखा-जोखा तैयार किया। वो कितनी देर घूमते बिताते हैं। शिकार से बचने में, खुद को सँवारने में, लड़ने, खेलने, अपने साथी को रिझाने में उनका कितना समय लगता है। दिलचस्प था यह जानना कि चीतल का 80 से 90 फीसदी समय खाने में जाता है। 4 से 8 प्रतिशत शिकार से बचने में। 6 से कम प्रतिशत लड़ने में। 5 प्रतिशत से कम खुद को दिखाने में। एक या इससे भी कम फीसदी समय इधर-उधर घूमने में लगता है। इतना ही समय खुद की साफ सफाई में लगता है। 2 फीसदी से कम समय खेलने में और 5 फीसदी साथी से प्रेम प्यार करने में बीतता है।

इसके बाद बच्चों, वयस्क मादाओं और नर चीतलों के समय का भी पूरा लेखा-जोखा तैयार किया। और पाया कि अवस्थाओं के हिसाब से अलग अलग कामों में लगनेवाला समय बदलता रहता है। जैसे, कड़े सींगों वाले नर खाने-पीने में कम समय लगाते हैं, पर खुद को दिखाने, लड़ने और घूमने-फिरने में ज़्यादा समय लगाते हैं। जबकि मादाओं का शिकार से बचने में ज़्यादा वक्त लगता है। और बच्चे वो तो खेलने-कूदने में रमे रहते हैं।

यह जानना इतना मज़ेदार था कि मन किया पता लगाऊँ और जीव किस-किस में कितना समय लगाते हैं। पर हैरान रह गया कि कहीं कोई जानकारी न थी। कितना आसान है और कितना मज़ेदार भी, फिर भी क्यों किसी को इस पर समय लगाने का ख्याल नहीं आया। इस एक आँकड़े से कितना कुछ पता चला सकता है कि अलग-अलग जानवर जो कुछ भी, और जैसे भी करते हैं, वो करते क्यों हैं।

मैंने तभी तयकर लिया कि पहला मौका हाथ लगते ही मैं पता लगाऊँगा कि मेरे ततैये सारा-सारा दिन क्या करते हैं!

कब्बन बाग के ततैये

जल्द ही मुझे एक मौका मिल गया। बैंगलोर के कब्बन बाग में मुझे एक किस्म के ततैयों के छत्ते मिले। मेरा यहाँ आना जाना यूँ भी काफी था। एक तो वो मेरे कॉलेज के रास्ते में था। दूसरा, यहाँ एक बहुत बढ़िया लाइब्रेरी थी। मैं घण्टों हाथ में नोटबुक और पेंसिल लिए इनके छत्ते के सामने बैठा रहता। अकसर कुछ उत्साही बच्चे मुझे घेरे रहते थे।

सबसे पहले तो मैंने उन सब कामों की एक लिस्ट बनानी शुरू की जो ततैये मुझे करते दिखते थे। जैसे, टाँगे मोड़कर और एंटीना झुकाए बैठना। एंटीना उठाए बैठना। एंटीना और पंख उठाए बैठना। अपनी सफाई करना। चलना। अपने छत्तों का मुआयना करना। लार्वा को खिलाना। दूसरे ततैयों पर हमला करना, उन्हें डंक मारना या उनका पीछा कर भगा देना, छत्ते से गायब रहना। कभी खाने-पीने या छत्ता बनाने के सामान के साथ तो कभी खाली हाथ बाहर से लौट आना। मेरी लिस्ट में कोई सौ काम जुड़ गए थे।

यह तो हुआ मेरा पहला काम। पर अभी दो ज़रूरी काम होने बाकी थे। एक, यह कि ततैयों को पहचानूँगा कैसे।

महाबलेश्वर सेमिनार

1979 में माधव गाडगिल ने एक सेमिनार आयोजित किया। विषय था सामाजिक व्यवहारों का विकास। इसमें दुनिया भर के नामी जानकार आए। मेरी खुशकिस्मती कि कई खाली दोपहरें इनके साथ बिताने को मिलीं। पर मैरी जेन से मिलना बहुत खास
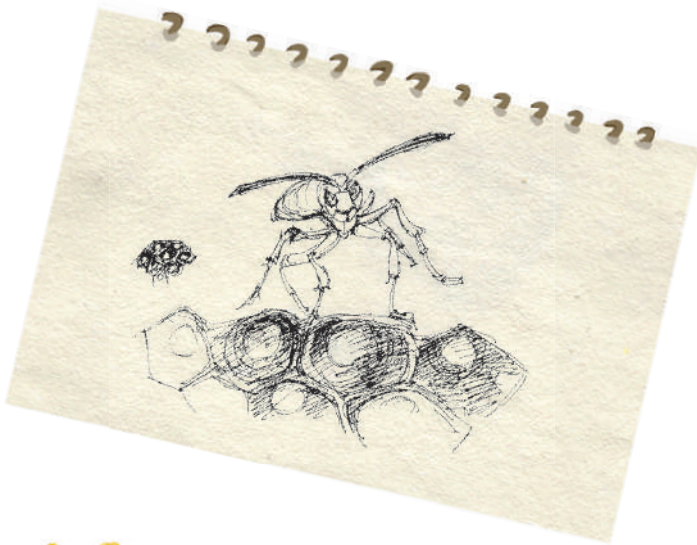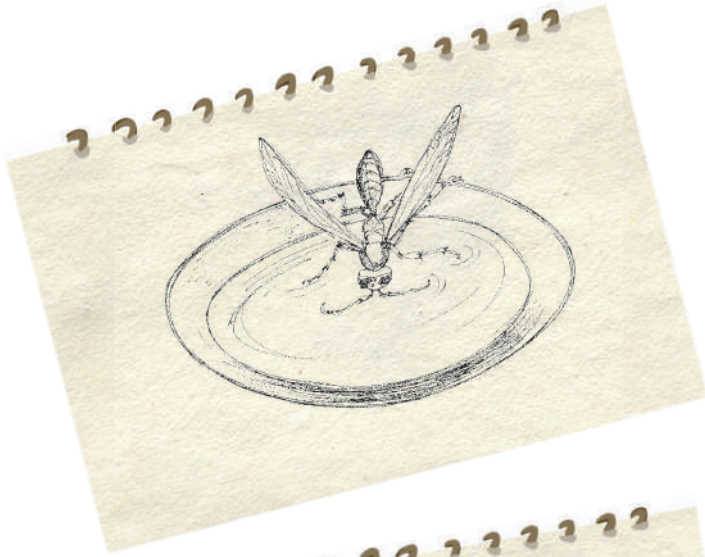
रहा। हममें से कई उन्हें ततैयों की रानी कहने लगे थे। इतनी सौम्य, मिलनसार, दिलदार कि उन-सा फिर कोई न मिला। वो बैंगलौर आईं और दूसरी बहुत-सी मददों के अलावा मुझे ततैयों की पहचान भी सिखाई।

जाते-जाते वो अपने इनैमल पेंट छोड़ गईं जो हमेशा उनके पास रहते थे। और कुछ रुपए भी जो उन्होंने कमाए थे। शुक्रिया मैरी, आपकी इस मदद से मैं ततैयों पर अपनी छोटी-सी रिसर्च कर पाया। रोज़ कप्पन बाग ऑटो से आना-जाना भी इसी की बदौलत सम्भव हुआ।

मेरी दूसरी दुविधा थी कि कैसे ततैयों को इस तरह देखें कि आप बस उन्हें देख ही रहे हैं। उनके बारे में आपके अच्छे-बुरे ख्यालों को बीच में आने दिए बगैर। सुनने में यह जितना आसान लगता है, उतना है नहीं। आप भले मन से जितने पक्के इरादे कर लें, दर्ज करते समय कलम फिसल ही जाती है। तो देखी चीज़ों को जस का तस दर्ज करने का हुनर मुझे सीखना था। और वो मिला जीन ऑटमैन के एक पर्चे में। इंसानी पूर्वाग्रहों को परे रखने के एक नहीं तीन तरीके पता चले। एक था, छत्ते के सारे ततैयों पर एक उड़ती नज़र डालना और उस पल वो जो करते दिखें उन्हें दर्ज कर लेना। कुछ-कुछ फोटो खींचने जैसा। डिब्बे में रखी पर्चियों में से बिना देखे जैसे कोई पर्ची चुनते हैं, वैसे ही मैंने ततैयों को चुनना शुरू किया। मैं अपनी दाईं जेब में ततैयों के नाम की पर्चियाँ रखता। एक-एक को निकालता जाता और उन्हें बाईं जेब में रखता जाता।

दूसरा तरीका था यूँ ही किसी एक ततैये को चुन लेना और फिर वो जो भी करे उसे नोट करते जाना।

तीसरा तरीका था उनकी कुछ विरली हरकतों को चुनना (ऐसी जो पहले दो तरीकों में कम दर्ज हुई हों)। और एक तय समय के भीतर कोई भी ततैया उन हरकतों को करता दिखे, उसे दर्ज कर लेना।

इन तीन तरीकों को मिलाकर मैंने कब्बन बाग के दो छत्तों में चिन्हित ततैयों की हर हरकत को दर्ज करना शुरू कर दिया। ततैए दिन भर में कब क्या करते हैं इसका पूरा टाइम टेबिल अब मेरे पास था। (विज्ञान में इसे टाइम एक्टिविटी बजट कहते हैं।)। आँकड़े जब सामने हों तो हमारी राय आम तौर पर ध्वस्त हो जाती है। मैं भी झटका खा गया जब देखा कि ततैये सिर्फ छह कामों में अपना 95 फीसदी समय खपा देते हैं। मेरी सौ कामों वाली लम्बी लिस्ट धरी रह गई। ऊपर से ये छह काम मुझे तो ततैयों की ज़िन्दगी में कोई खास मतलब के नहीं लगते थे। कोई कब तक बैठे-बैठे खुद को सँवारना, एंटीना खड़े कर बैठे रहना, पंख उठाकर बैठे रहना, चलना, छत्ते को जाँचना-परखना, छत्ते से गायब रहना करता रह सकता था। इन छह कामों में न खाना था, न लड़ना-भिड़ना और न साथी संग प्रेम रचाना।

फिर मैंने खुद से कहा देखो भाई, अगर दर्ज करते हुए अपने पूर्वाग्रहों को बीच में न आने दिया तो अब जब उनके कुछ व्यवहार साफ तौर पर उभरते नज़र आ रहे हैं तो अब क्यों मैं अपने पूर्वाग्रहों को बीच में आने दूँ। इस ज्ञान प्राप्ति के बाद, उन छह कामों को ध्यान में रखते हुए मैं ततैयों के जीवन के बारे में अन्दाज़ लगाने लगा।

और क्या ज़बरदस्त पैटर्न दिखा। यह सही है कि लगभग सभी ततैये 95 फीसदी से ज़्यादा समय इन्हीं छह कामों में लगाते हैं, पर कौन किस काम में कितना समय लगाता है इसमें काफी अन्तर दिखा। कुछ ततैए 50 प्रतिशत से ज़्यादा समय बैठे-बैठे खुद को सँवारने में लगाते हैं और 10 प्रतिशत या कम समय अपने छत्ते से गायब रहते हैं। और कुछ एकदम उलट करते हैं। 70 प्रतिशत टाइम घर से बाहर रहना और 10 प्रतिशत से कम समय अपनी साफ-सफाई में लगाना। ऐसे ही कई देर तक अपने एंटीना उठाए बैठे रहते हैं तो कई देर तक पंख और एंटीना नीचे किए बैठने में सुकून पाते हैं।

ये इतना फर्क क्यों?

क्या इससे उनकी सोसाइटी के रंग-ढँग की ओर कोई इशारा मिलता है!

कहीं अटक जाओ तो सबसे अच्छा तरीका है किसी से साझा करना। मैंने भी वही किया। देर रात की फिल्म देख पैदल लौटते हुए मैंने अपने दोस्त निरंजन जोशी को सब कुछ बता दिया। इत्तेफाकन वो भी ऐसी ही किसी मुश्किल से जूझ रहा था। अलबत्ता, उसका सन्दर्भ दूसरा था। वो एक शोधकर्ता को भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में होने वाली बारिश के पैटर्न को समझने में मदद कर रहा था। हमें समझ आया कि उसी तकनीक का इस्तेमाल हम ततैयों के टाइम एक्टिविटी बजट को समझने में भी कर सकते हैं।

और क्या कमाल कि वो काम कर गया।

इससे हम ततैयों को तीन हिस्सों में बाँट सके।

देर तक बैठे रहकर खुद को सँवारने वालों को
हमने नाम दिया - बिठाके

लड़ने-भिड़ने में तेज़ - लड़ाके

छत्ते से देर तक गायब रहने के बाद कुछ लेकर
लौटने वाले - जुटाके

अगले चालीस सालों में मैंने या मेरे छात्रों ने इस आकर्षक जीव इंडियन पेपर वास्प पर जितने भी काम किए वो इस बुनियाद पर खड़े थे।

कुत्ते दिन भर क्या करते रहते हैं?

चलिए, अब वहीं चलते हैं जहाँ से बात शुरू हुई थी। अरुणिता बैनर्जी और अनन्दिता भद्रा ने कुत्तों के दिन-रात को समझने के लिए जो काम किया वो चीतल या ततैयों के काम से कहीं आगे का है।

उन्होंने बारह साल तक कुत्तों की हर हरकत पर नज़र रखी। और तकरीबन 177 हरकतों की सूची बनाई (इसका बढ़ना जारी है)। जैसे ही कोई कुत्ता नज़र आता वो उसकी हरकत को नोट कर लेतीं। इस तरह एक साल में उन्होंने 5669 हरकतें दर्ज कीं।

इसके लिए वो तयशुदा रास्तों और यूँ ही चुने ठियों पर रात दिन आती-जाती रहीं। उन्होंने पश्चिमी बंगाल के कई उपनगरों और आयसर कोलकाता के कैम्पस के कुत्तों पर नज़र रखी। जैसे ही कोई कुत्ता दिखता वो नोटबुक (बाद के दिनों में फोन पर) में उसकी उम्र, लिंग, हरकत, समय, दिन और जगह नोट कर लेतीं। अरुणिता कहती हैं - शनिवार-इतवार को मैं कल्याणी से नौ स्टेशन दूर बैरकपुर का वापसी टिकट लेती। कोविड से पहले के दिनों में हर स्टेशन पर आपको बेशुमार लोग, बेशुमार कामों में लगे दिखते। हर ओर खाने के बेशुमार ठिए होते, रिक्शा स्टैण्ड और बड़े बस अड्डों पर खास तौर पर। यानी कुत्ते भी बेशुमार मिलते। खाने और रहने की जगह आसानी से मिल जाती इसलिए बहुत-से कुत्ते तो स्टेशन पर ही रहने लगे थे। मैं कल्याणी से ट्रेन पकड़ती और बीच के दस में से किसी भी स्टेशन पर उतर जाती। स्टेशन और आसपास के इलाकों में कुत्तों की हरकतों को दर्ज करती और किसी भी दिशा में जा रही किसी भी ट्रेन में बैठ जाती।

कुत्ते जो काम सबसे ज़्यादा करते पाए गए वो था - आराम फरमाना। कई तरह की सक्रिय मुद्राएँ बनाने, चलने की अदाएँ, खाने की तलाश, खाने, भौंकने, खेलने में उनका बहुत ही कम समय लगता दिखा।

इसमें दिन के अलग-अलग समय में या मौसमों में दिखनेवाले कई दिलचस्प बदलावों का ज़िक्र नहीं किया गया है। ततैयों के अध्ययन की तरह ही इस पर

भी कई सवाल उठेंगे। इससे इन जैसे कई जाने-पहचाने जानवरों के बारे में रोचक तथ्य पता करने के रास्ते भी खुलेंगे।

एक अचरज तो इनके पर्चे में है ही। आम तौर पर हमारा मानना है कि कुत्ते रात में ज़्यादा सक्रिय होते हैं। पर आँकड़े बताते हैं कि गली के कुत्ते दिन में भी उतने ही सक्रिय रहते हैं। कुत्ते अकसर इंसान द्वारा बदली परिस्थितियों से तालमेल बैठा लेते हैं। और जी जाते हैं। ऐसा कैसे हो पाता है? इससे यह समझें कि पालतू जीव अपने आसपास की परिस्थितियों से आसानी से तालमेल बैठा पाते हैं। या फिर यह समझें कि जो तालमेल बैठा पाता है उसे पालतू बनाना आसान हो जाता है?

कुत्तों पर बनी वैज्ञानिक समझ से हमें कुत्तों के बारे में पता चलने के साथ-साथ यह भी पता चलेगा कि कैसे हम उनसे तालमेल बैठा पाएँ। इससे विकास के बारे में भी जानकारी मिलेगी। खास तौर पर इस पर कि विकास के दौरान पालतू बनाना कैसे सम्भव हो पाया।

कुत्ते हर जगह दिख जाते हैं। उन्हें देखना, उन पर नज़र रखना मुश्किल भी नहीं। इस लिहाज़ से कुत्ते कई शोधों के लिए मुफीद ठहर सकते हैं। पर कुत्ते कम ही किसी वैज्ञानिक शोध का हिस्से बने हैं। कुछ इसलिए भी कि विज्ञान में किस चीज़ को इज़्ज़त बख्शी जाती है उसे लेकर हमारी सोच तंग है। ऊपर से खुद विज्ञान को लेकर हम कोई रोशन समझ नहीं बना पाए हैं।

पर शुक्र है चीज़ें बदल रही हैं।

कुत्तों पर किए गए इस अध्ययन ने मुझे उम्मीदों से भर दिया है। यकीन है कि उम्मीद की फसलें लहलहाती रहेंगी।

(शुक्रिया The Wire)

मेरा बेटा पहली बार अपनी नानी के पापा यानी परनाना से मिल रहा था। उन्हें देखते ही उसने पूछा, "आप कितने साल के हैं?"

नाना ने कहा, "92"।

उसे विश्वास ही नहीं हुआ और उसने पूछा, "क्या आपने 1 से शुरू किया था?"

चित्रः वसुन्धरा अरोरा
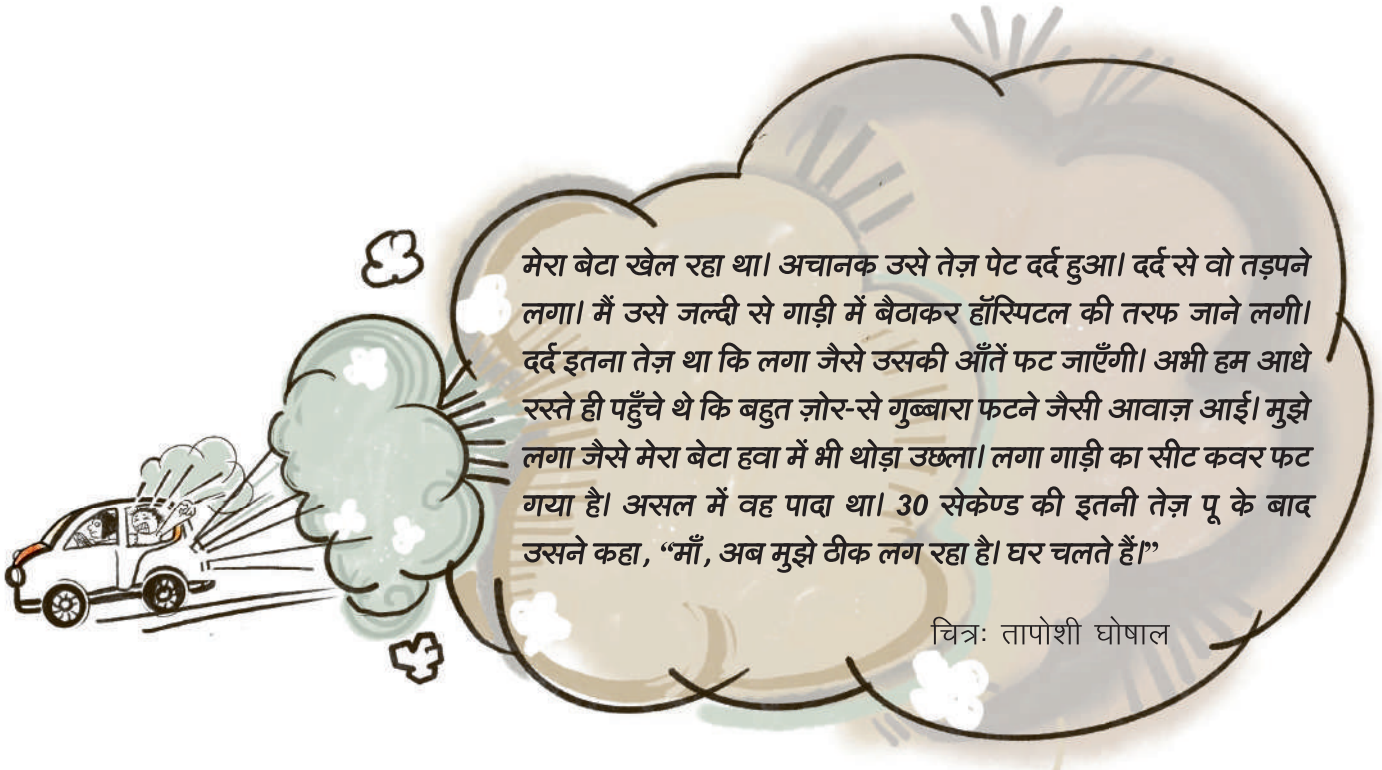
मेरा बेटा खेल रहा था। अचानक उसे तेज़ पेट दर्द हुआ। दर्द से वो तड़पने लगा। मैं उसे जल्दी से गाड़ी में बैठाकर हॉस्पिटल की तरफ जाने लगी। दर्द इतना तेज़ था कि लगा जैसे उसकी आँतें फट जाएँगी। अभी हम आधे रस्ते ही पहुँचे थे कि बहुत ज़ोर-से गुब्बारा फटने जैसी आवाज़ आई। मुझे लगा जैसे मेरा बेटा हवा में भी थोड़ा उछला। लगा गाड़ी का सीट कवर फट गया है। असल में वह पादा था। 30 सेकेण्ड की इतनी तेज़ पू के बाद उसने कहा, "माँ, अब मुझे ठीक लग रहा है। घर चलते हैं।"

चित्रः तापोशी घोषाल

गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं

प्रेरणा शुक्ला
चित्रः राजीव आइप

गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं
कजरारे नैन, गर्दन ऊँची,
और उँगलियाँ महीन थीं

बालों में वो सिर्फ कियो कारपीन लगातीं
ठण्ड में भी तीन बार मुँह धोतीं
दो बार नहातीं
अपने बड़े वाले आईने संग घण्टों बितातीं
चाय की नशेड़ी और मिजाज़ की नमकीन थीं
गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं
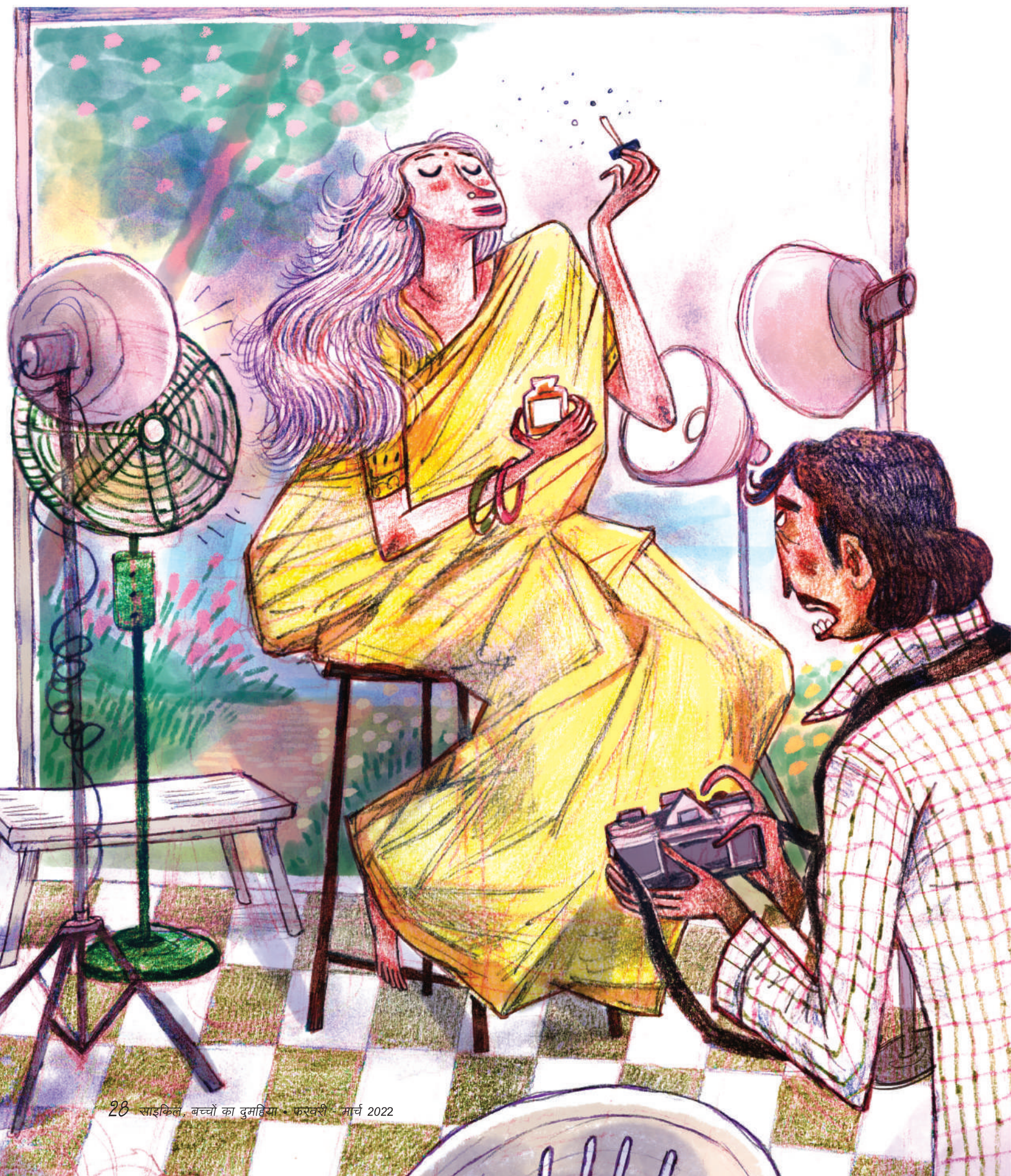
लोग कहते, ठीक है अम्मा
तुम सुन्दर हो
नूतन जैसी दिखती हो
पर कैसे कहें कि ये शौक है
बीमारी नहीं है?

अम्मा कुछ चिढ़तीं-कुढ़तीं-कहतीं-
बेटा नूतन हमारे बाद की पैदाइश है
तुमको जानकारी नहीं है

हम नूतन-सी नहीं
हाँ, नूतन की कुछ-एक बनावट हम-सी ज़रूर है
मायापुरी वाले उसकी तस्वीर छापते हैं
क्योंकि वह हमसे ज़रा-सी ज़्यादा मशहूर है
एकाध फिल्मी गाने हम पर भी बन ही सकते हैं
कि पानदारीबे की गेन्दा
बड़ी दिलचस्प-दिलकश-दिलनशीन थीं
गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं

अम्मा अपने जन्मदिन पर
चमन फोटो स्टूडियो ज़रूर जातीं
कोई सूफियाना रंग पहनतीं
कलाई में घड़ी सजातीं
घर से बन सँवर कर चलतीं
पहुँच कर फिर से टच-अप करातीं
पल्लू को कुछ ढीला-सा छोड़ देतीं
और फोटो खिंचने से पहले इतर लगातीं
अम्मा फोटो में खुशबू कैद नहीं होगी, चमन कहता
बेटा, माहौल भी कोई चीज़ होती है, अम्मा समझातीं
अम्मा की हर फोटो
पिछली वाली से बेहतरीन थी
गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं

अम्मा के गुज़र जाने के बाद
दो-एक सालों तक एक चिड़िया हमारे घर आती
अटारी में चुपके से घुसकर
पुराने आईने संग घण्टों बतियाती
सारी दोपहरिया बड़े आईने से उलझी रहती
न दाना चुगती, न कुछ पीती, न खाती
चोंच से शीशे को मारती
हम भगाते तो हैरानी जताती

आखिरकार नानी ने शीशे को चूने से पुतवा दिया
खिड़कियों पर अखबार चिपके
मनोहर मामा की खूँखार बिल्ली को बुलवा लिया
पर वो चिड़िया फिर भी आती
सफेद शीशे को चोट देती
बिल्ली को शायरी सिखाती
बिल्ली कहती, गेन्दा तुम्हारे बिना मेरी लाइफ बड़ी गमगीन थी
गेन्दा अम्मा बड़ी शौकीन थीं

जसिन्ता की डायरी -5

गिलहरी की भाषा

जसिन्ता केरकट्टा
चित्रः प्रिया कुरियन

यहाँ जर्मनी के नौसडट शहर से बाहर हार्ट नाम के एक गाँव में रहते हुए थोड़ी जर्मन सीखी। लेकिन एक दिन पहाड़ पर बैठे-बैठे एक मोटी गिलहरी को देखा और उससे, उसकी भी भाषा सीखी। यहाँ गिलहरी भारत की गिलहरियों की तुलना में थोड़ी ज़्यादा बड़ी और मोटी लगती हैं। पहाड़ पर गिलहरी की आवाज़ सुन, उसकी ही तरह उसे पलट कर आवाज़ दी तो गिलहरी पेड़ से झाँक कर देखने लगी। मैंने पहली बार उसकी बड़ी-बड़ी आँखें देखीं। उसे पहली बार इस तरह पलटकर ताकते हुए देखा। मैंने फिर उसकी आवाज़ में उसे आवाज़ दी और उसने हर बार पलटकर जवाब दिया। दूसरे दिन मैं उसके लिए बादाम लेकर पहाड़ जाने लगी। शाम तक उसका इन्तज़ार किया। वह नहीं आई तो खुद ही सारा बादाम खाकर घर लौट आई। यहाँ जंगल से जुड़े लोगों ने बताया आजकल गिलहरी जंगल के ज़्यादा अन्दर चली जाती है। उसको छाँव पसन्द है और तुम्हें धूप। अभी तुम उनके बारे में कुछ नहीं जानती।

सोचती हूँ भाषाओं का काम क्या है? किसी को आवाज़ दो तो वह पलटकर देखता है और मुस्कराता है। बस इतनी-सी बात है। जिनकी भाषा हम नहीं जानते हैं उन्हें अपनी भाषा में बात करते देखते हैं और खुश होते हैं तो उनका अपनी भाषा पर यकीन बढ़ता है।

कभी-कभी सोचना चाहिए हमने भाषाओं का इस्तेमाल किस तरह किया है? और क्यों हर आदमी एक दूसरे की भाषा से डरता है? क्यों कोई अपनी भाषाओं में दूसरे आदमी को नीचा दिखाता है और स्त्रियों का अपमान करता है? क्यों भाषा जानते हुए भी मदद के लिए किसी के लाख पुकारने पर भी कोई पलटकर नहीं आता है? क्यों आदमी, आदमी की भाषा नहीं समझ पाता है?

23 जुलाई 2020
हार्ट विलेज, नौसडट, जर्मनी

सरहद पर चेरी

एलन शॉ
चित्रः अपर्णा महियारिया

सकूरा

1989 बर्लिन की दीवार गिरा दी गई। और पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी एक हो गए। इस मौके पर जापान के एक टी.वी. नेटवर्क टी.वी. असाई ने एक बहुत ही खूबसूरत अभियान चलाया। इसे लोग सकूरा कैम्पैन के नाम से जानते हैं। जापानी भाषा में सकूरा का मतलब है चेरी का पेड़। यह कैम्पैन एक तरह से जापानियों की जर्मनी के साथ दोस्ती की अभिव्यक्ति था। टी.वी. असाई ने इसके लिए लोगों से पैसा देने की अपील की। इस कैम्पैन में जर्मनों ने भी बड़ी राशि जमा की। अगले बीस सालों तक हज़ारों चेरी के पेड़ बर्लिन और ब्रैंडनबर्ग में लगाए गए। बाकी पैसा ब्रैंडनबर्ग को सौंप दिया गया कि वे जहाँ चाहें चेरी लगाएँ।

1919 में ट्राईमेकर ब्रिज से इस अभियान की शुरुआत हुई थी। इन पेड़ों को बर्लिन की सरकार ने पार्क, स्कूल, नर्सरी, अस्पताल, कब्रिस्तान में लगाया। और उस सरहद पर भी लगाए जहाँ पहले दीवार थी। सबसे अधिक पेड़ लांटसा पार्क में लगाए गए। यह लिस्बनबर्ग और ब्रैंडनबर्ग की सीमा पर है। हज़ारों चेरी के पेड़ लगाए गए।

2001 से यहाँ एक उत्सव होता है। इसे हनामी उत्सव कहते हैं। करीब 25000 पर्यटक यहाँ हर साल आते हैं। यह वही जगह है जहाँ पहले दीवार हुआ करती थी। अप्रैल में जब यह उत्सव होता है तब चेरी फूलों से भरा होता है। मैं हर साल हनामी उत्सव में शामिल होता हूँ। उसे देखता हूँ। उसे जब-तब देखता रहना चाहता हूँ। इसीलिए तसवीरें खींचता हूँ। यह सिर्फ जापान और जर्मनी की दोस्ती का प्रतीक भर नहीं है। इस उम्मीद को ज़िन्दा भी रखता है कि पूरी दुनिया की सरहदों पर फूल खिलाए जा सकते हैं...

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
चित्र देबब्रत घोष

ऊँचा और खींच दे कोई
सपनों का कन्दील हमारा
धरती से अच्छा लगता है
अम्बर में अपना उजियारा

दूर आ रहा होगा कोई
मेरे घर का पता पूछता
उसे भटकने से रोकेगा
यह मेरा रंगीन सितारा
ऊँचा और खींच दे कोई
सपनों का कन्दील हमारा...

चन्द तीलियाँ, थोड़ा कागज़,
एक दीया, छोटी-सी बाती,
सब मिलकर के दूर करेंगे
धरती पर फैला अँधियारा
ऊँचा और खींच दे कोई
सपनों का कन्दील हमारा...

अगर कभी पूछे कोई तो
उसको इतनी बात बताना
कहना, जिसने ठोकर खाई
वही बना नन्हा ध्रुवतारा

ऊँचा और खींच दे कोई
सपनों का कन्दील हमारा
धरती से अच्छा लगता है
अम्बर में अपना उजियारा।

पेड़ों का इंटरनेट

सूज़ैन सिमादरी
चित्रः तापोशी घोषाल

मेरा घर जंगल के पास ही था। मैं ज़मीन पर लेटकर विशाल पेड़ों के शिखरों को ताकती रहती थी। और पेड़ों से झिलमिलाते उजाले से आँख-मिचौली खेलती थी। मेरे दादा पश्चिमी कनाडा के वनों में देवदार के पेड़ों की कटाई का काम करते थे। मुझे जंगल के बारे में वही बताते थे। वे कहते कि वे लोग भी वनों का ही हिस्सा हैं। एक बार मेरे दादा ज़मीन खोद रहे थे। मैंने देखा कि पेड़ ऊपर जितने बड़े होते हैं, ज़मीन के नीचे भी उतने ही फैले हुए होते हैं। अचानक समझ आया कि घरों की तरह जंगलों की भी नींव होती है।

वयस्क होते-होते मुझे वनों की कटाई से होने वाली बरबादी साफ नज़र आने लगी। लकड़ी का व्यापार करने वाले प्राकृतिक जंगल काटकर ऐसे पेड़ लगा रहे थे जिनसे लकड़ी अधिक मिल सके। मैंने पेड़-पौधों की पढ़ाई शुरू कर दी। उसी समय कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में यह समझा था कि एक अंकुर अपनी जड़ों के रास्ते दूसरे अंकुर को कार्बन दे सकता है। जीवन का आधार ही कार्बन है। पेड़-पौधे हवा से कार्बन डाइऑक्साइड खींचते हैं और उससे 'कार्बोहाइड्रेट' (यानी मीठी शक्कर) बनाते हैं। हमारा भोजन भी मुख्य रूप से कार्बन ही होता है। हमारा शरीर भी बड़ी मात्रा में कार्बन से ही बना है।

मुझे लगा कि अगर नन्हे अंकुर यह लेन-देन कर सकते हैं, तो बड़े पेड़ भी अपनी जड़ों से शक्कर और दूसरी चीज़ें बाँटते होंगे। पर मेरे विश्वविद्यालय में कोई भी उस पर विश्वास नहीं करता था। इस पर प्रयोग करने के लिए मुझे साधन भी नहीं मिल रहे थे। तो मैंने पैसे खर्च किए बगैर जंगल में ही प्रयोग करने शुरू किए। मैंने तीन प्रजाति के 80 पौधे लगाए। वहाँ एक भालू और उसका बच्चा बार-बार आते थे। इसलिए मुझे वहाँ से भागना पड़ता था। पर एक प्रयोग काम कर गया।

मैंने कोंपलों को प्लास्टिक से ढँका और भीतर ऐसी कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ी जिसे मैं अपने यंत्रों से नाप सकती थी। मैंने पाया कि जो गैस एक ढँके हुए पौधे को ही मिल रही थी, वह जल्दी ही दूसरे पौधे में भी मिलने लगी। प्रयोगशाला में नहीं, जंगल में! अलग-अलग प्रजातियों के बीच! यही नहीं, जब एक पौधे में पत्तियाँ न हों और वह अपना भोजन न बना पाए, तब उसे खाना-पीना दूसरे पौधों से मिल जाता था।

फिर यह भी दिखा कि यह लेन-देन केवल कार्बन का नहीं, बल्कि पानी, नाइट्रोजन, तरह-तरह के हॉरमोन आदि हर उस चीज़ का है जिसकी ज़रूरत पेड़-पौधों को होती है। वो एक-दूसरे को अपनी ज़रूरत बताते रहते हैं, उसके अनुसार सहयोग भी करते हैं। बल्कि सभी वनस्पतियाँ एक तरह के इंटरनेट से हमेशा जुड़ी रहती हैं, आपस में लगातार बात करती रहती हैं।

यह इंटरनेट फफूँद से बनता है। लगभग सभी पेड़-पौधों की जड़ों में फफूँद फैली रहती है। यह ज़मीन के नीचे रहती है इसलिए हमें दिखती नहीं है। बस,
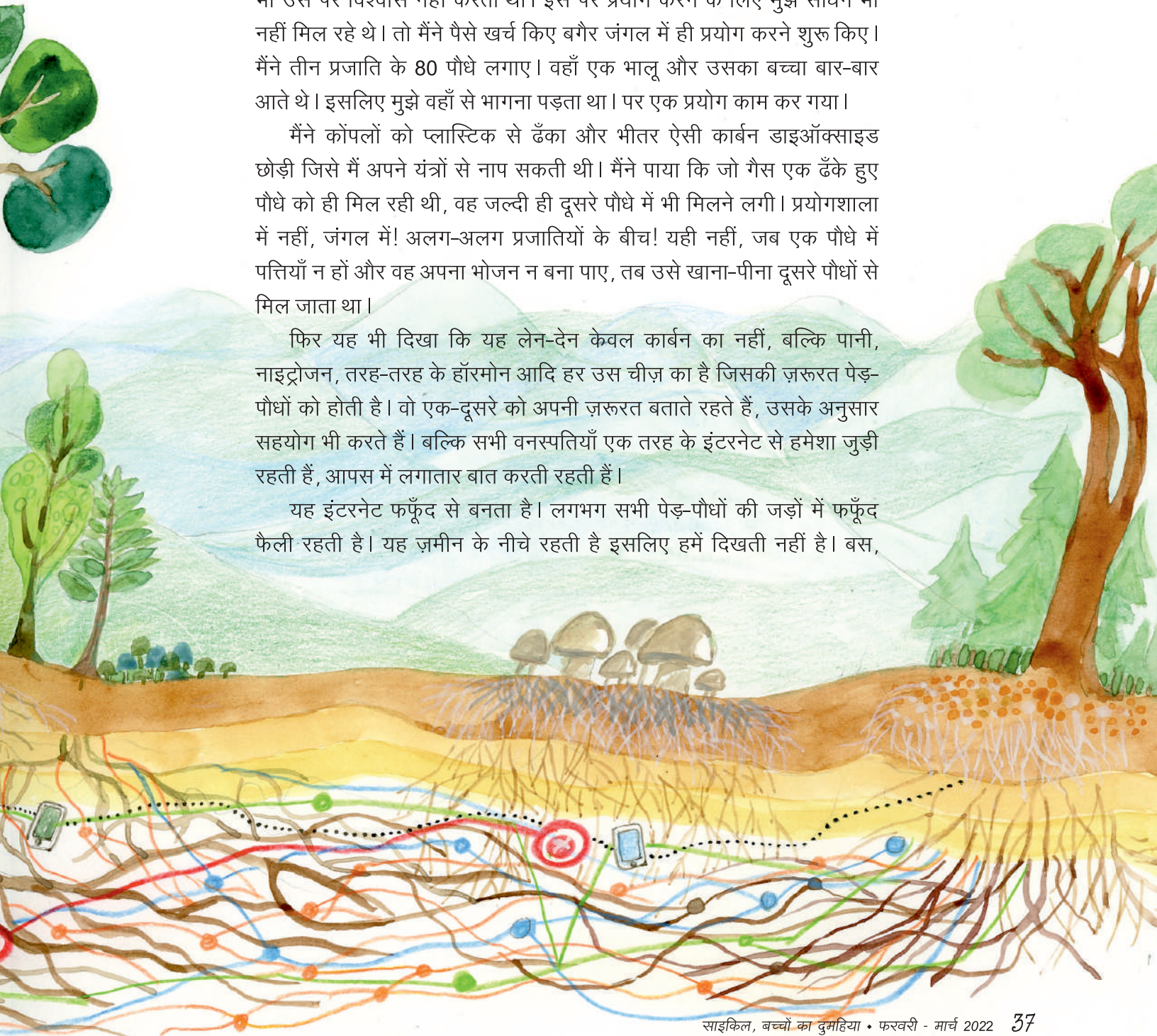
उसका ऊपरी हिस्सा दिखता है, जैसे, मशरूम। वनस्पति फफूँद को अपनी जड़ों से कुछ शक्कर देते हैं। बदले में वह फफूँद मिट्टी में मौजूद खनिजों को ऐसा बना देती हैं कि उन्हें पेड़-पौधे जड़ों के ज़रिए सोख लें। यह इंटरनेट कितना गहन होता है, यह इससे समझ सकते हैं कि आप जहाँ खड़े हों, उसके नीचे कई सौ किलोमीटर के तार मौजूद हैं। इनसे पेड़-पौधे बहुत मुश्किल बातें भी सहज ही कह लेते हैं। अगर कोई पेड़ काट रहा हो तो वह अपनी पीड़ा इसी इंटरनेट के ज़रिए दूसरे पेड़ों तक पहुँचाता है। यानी वनस्पति संसार भी उतना ही सामाजिक है जितना हमारे परिवार और समाज होते हैं।

आज सभी मानते हैं कि जंगल का मतलब केवल पेड़ नहीं होता। उसमें कई ब्रह्माण्डों का रस मिला होता है। उनका अपना इंटरनेट है, मोबाइल फोन है। उनकी अपनी पत्रिकाएँ भी होंगी और अपनी 'साइकिल' भी।
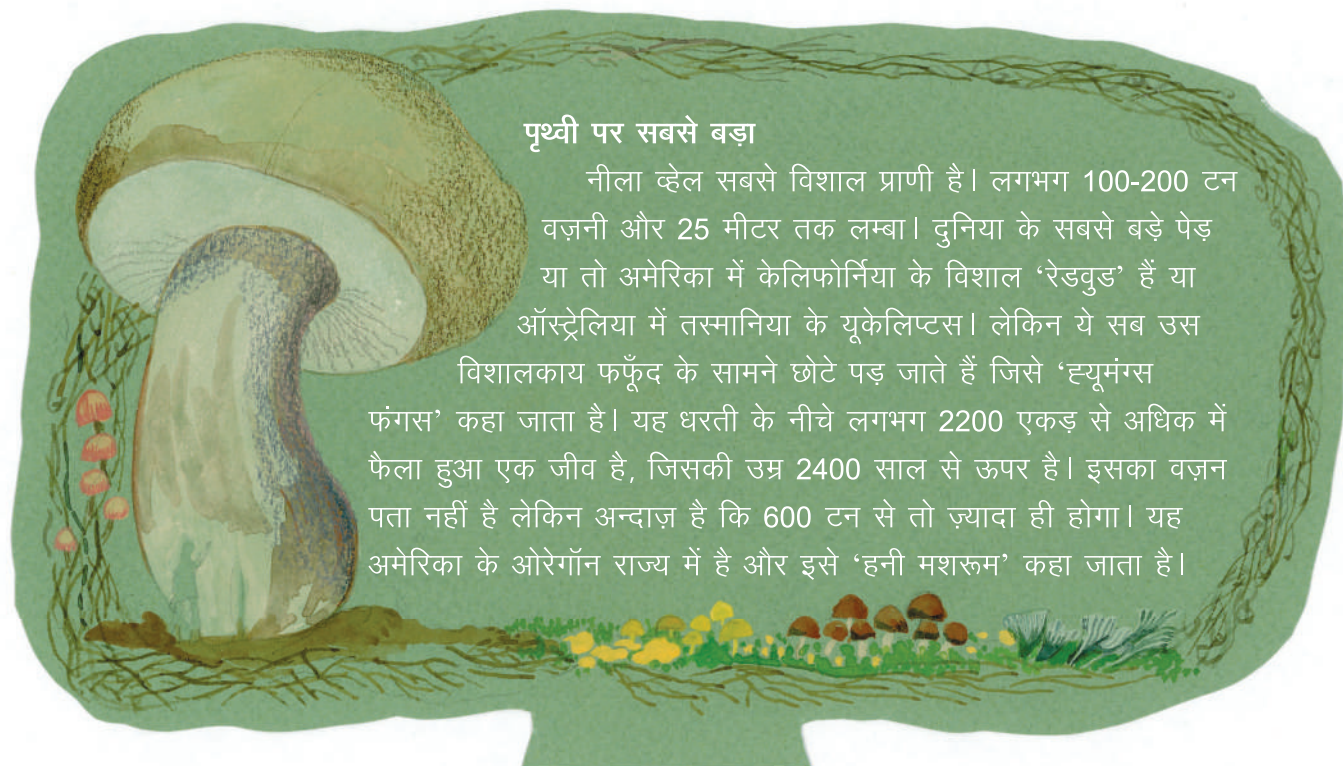
पृथ्वी पर सबसे बड़ा

नीला व्हेल सबसे विशाल प्राणी है। लगभग 100-200 टन वज़नी और 25 मीटर तक लम्बा। दुनिया के सबसे बड़े पेड़ या तो अमेरिका में केलिफोर्निया के विशाल 'रेडवुड' हैं या ऑस्ट्रेलिया में तस्मानिया के यूकेलिप्टस। लेकिन ये सब उस विशालकाय फफूँद के सामने छोटे पड़ जाते हैं जिसे 'ह्यूमंगस फंगस' कहा जाता है। यह धरती के नीचे लगभग 2200 एकड़ से अधिक में फैला हुआ एक जीव है, जिसकी उम्र 2400 साल से ऊपर है। इसका वज़न पता नहीं है लेकिन अन्दाज़ है कि 600 टन से तो ज़्यादा ही होगा। यह अमेरिका के ओरेगॉन राज्य में है और इसे 'हनी मशरूम' कहा जाता है।

आँख में कुछ काला है!

अभिषेक कुमार
चित्रः तापोशी घोषाल

इस दुनिया में आए मुझे कोई पाँच-छह दिन ही हुए होंगे। कि उसे मेरी आँखों में लगाया जाने लगा। नहलाने के ठीक बाद माँ उसे मेरी आँखों में लगा देतीं। उसके लगते ही मानो मेरी आँखें मुस्करा उठतीं। किसी दिन माँ भूल जातीं तो बाबा नाराज़ हो जाते। उन्हें लगता कि मेरी आँखें इसके बिना सूनी हो जाती हैं। लगता तो मुझे भी था कि वह बना ही मेरी आँखों के लिए है।

फिर समय गुज़रता गया। उम्र बढ़ती गई। उसका साथ छूटता गया। मुझे उसके बिना अपनी आँखें खटकती रहतीं। मगर माँ को मेरी सूनी आँखें दिखना बन्द हो गया था। एक दिन मैंने माँ से पूछ ही लिया, "माँ, मेरा कजरोटा कहाँ है?"

माँ बोलीं, "सन्दूक में।" उनके बोलने की रुखाई से या जाने क्यों मेरी आँखें भर आईं। कजरोटा होता तो मुझे उसे सँभालना पड़ जाता। मैंने माँ से पूछा, "पर आप तो रोज़ लगाती हो।"

"हाँ, मेरी बात अलग है।"

वह दिन था और आज का दिन है न माँ ने कभी इस बारे में बात की न ही मैंने। अपनी आँखों का काजल अपनी आँखों को नहीं दिखता। पर वह काजल दूसरी आँखों में आ आकर दिखाई देता रहता है। कभी पड़ोस की शालू की आँखों में चमकता रहता है, तो कभी चाची, दीदी और माँ की आँखों में। मैं उन्हें देखता हूँ तो आँखों से पहले आँखों में लगे काजल को देखता हूँ। कभी-कभी वे मेरा ये दो बार देखना देख लेती हैं।

माँ तो माँ मेरे बाबा।...जिन्हें बेकाजल मेरी आँखें सूनी लगा करती थीं, उन्हें भी मेरी आँखों का काजल चुभने लगा। उन्हें लगता है कि काजल लड़कों के सिर्फ बचपन का साथी हो सकता है। वह लड़कियों, महिलाओं का श्रृंगार हो सकता है। लड़कों का नहीं।

उन्हें क्या पता कि कुछ आँखें काजल चाहती हैं। कुछ मन हैं जो काजल ढूँढते हैं। और ये दुनिया उनकी भी है। जो बचपन की आँखों को और उसके काजल को सहेजकर रखते हैं।

सुना, माँ, सुना बाबा!

शिकायत

अनवर जाफरी
चित्रः एलन शॉ

घण्टी बज चुकी थी। फादर कौक्स क्लास में आते ही होंगे। बच्चे बैठ चुके थे। एक भनभनाहट थी जैसी टीचर के क्लास में न होने पर रहती है। तभी मेरे बगल में बैठे लड़के ने दबी आवाज़ में कहा, "देखो, जॉर्ज कॉमिक्स पढ़ रहा है।" जॉर्ज क्लास में दूसरी तरफ, हम से अगली कतार में बैठता था। मैंने देखा वह डेस्क पर झुका हुआ एक कॉमिक पढ़ने में मगन है। कॉमिक्स को उसने एक किताब के साथ पकड़ रखा था ताकि ज़रूरत पड़ने पर जल्दी से उसे छिपा सके।

हमारी क्लास में कॉमिक्स लाना एकदम मना था। यह बात बहुत पुरानी है। तब सुपरमैन और स्पाइडरमैन की शुरुआत भी नहीं हुई थी। उस समय की कॉमिक्स में अँग्रेज़ी के क्लासिक उपन्यासों की संक्षिप्त कहानियाँ होती थीं। कॉमिक्स पढ़कर उपन्यास की कहानी फटाफट पता चल जाती इसलिए उसे पढ़ने के बाद मूल उपन्यास पढ़ने का मन नहीं करता था।

यूँ भी हमको अच्छी अँग्रेज़ी सिखलाना हमारे अध्यापकों के लिए एक चुनौती थी। अँग्रेज़ी के कई शिक्षकों का मानना था कि कॉमिक्स की आदत पड़ जाने पर हमारी अँग्रेज़ी नहीं सुधरेगी। सज़ा के डर से स्कूल में कोई भी कॉमिक्स नहीं लाता था। यह और बात थी कि अपने घरों में हम बड़े शौक से कॉमिक्स पढ़ते थे। कामिक्स महँगी होती थीं इसलिए एक दूसरे से बदलकर कामिक्स पढ़ने का चलन ज़ोरों पर था।

फादर कौक्स तीसरी कक्षा में हमारे अँग्रेज़ी के अध्यापक थे। वे बड़ी कक्षाओं में भी अँग्रेज़ी पढ़ाते थे और स्कूल के वाइस प्रिंसिपल भी थे। लहीम-शहीम

कद, गठा हुआ बदन और कुछ झूमती हुई फुर्तीली चाल। तेज़, पार चली जाने वाली नज़रें। वो मूल रूप से आइरिश थे। बच्चे उनसे दूर रहना पसन्द करते थे। जब किसी शैतान लड़के से क्लास टीचर आजिज़ आ जाते तो सज़ा दिलवाने उसे फादर कौक्स के ऑफिस भेजा जाता था।

तभी फादर कौक्स तेज़ चाल से कक्षा में दाखिल हुए। उनके आते ही कमरे का शोर थम गया। मैंने कनखियों से देखा, जॉर्ज ने फुर्ती से अपनी कॉमिक को दूसरी किताबों के नीचे छिपा लिया था। तभी पता नहीं कहाँ से मेरे दिमाग में उसकी शिकायत करने का ख्याल आ गया। बिना कुछ और सोचे मैं अपनी सीट से उठा और फादर कौक्स तक पहुँच गया। मुझे देख कर वह मेरी बात सुनने के लिए झुके और मैं कुछ हल्के स्वर में फुसफुसाया, "फादर, जॉर्ज इज़ रीडिंग ए कॉमिक।"

जॉर्ज के साथ मेरा कोई झगड़ा नहीं था। ना ही उसके साथ किसी तरह की प्रतिस्पर्धा थी। मैं आज तक भी समझ नहीं पाया कि उस दिन मैंने जार्ज की शिकायत क्यूँ की थी।

कॉमिक शब्द सुनते ही फादर कौक्स के कान खड़े हो गए। वे शिकारी की तेज़ी से जॉर्ज तक पहुँच गए। एक पल में ही उन्होंने जॉर्ज की किताबों के नीचे से कॉमिक ढूँढ निकाली। अपनी जगह वापस लौटकर उन्होंने पहले कॉमिक के दो टुकड़े किए और फिर चार। उन्होंने इनको रद्दी की टोकरी में डाला और फिर ऊँचे स्वर में बोले, "जॉर्ज! इधर आओ।" डरा सहमा जॉर्ज अपनी सीट से उठा और फादर के सामने पहुँचकर सिर झुकाए खड़ा हो गया। क्लास में सन्नाटा था। सबकी आँखें फादर कौक्स पर थीं। जिनके सामने खड़ा जार्ज डर से काँप रहा था।

यह वह ज़माना था जब शिक्षकों को पिटाई करने से परहेज़ नहीं था। हमारे स्कूल में पिटाई ज़्यादा तो नहीं होती थी पर ज़रूरत लगने पर कई शिक्षक छोटी क्लास के बच्चों को अपने खास अन्दाज़ में पीटा करते थे। पाँचवी में एक इंग्लिश टीचर होमवर्क न करने पर आगे झुकाकर पीठ पर बेंत मारते थे। फादर हैट्टी सज़ा देने से पहले छात्र से मुस्कराते हुए पूछते, "चिमटा चाहिए या झटका।" मैं दोनों तरीके चुन कर देख चुका था। चिमटा चुनने पर फादर हैट्टी पेट की चमड़ी को अपने अँगूठे और तर्जनी के बीच पकड़कर खूब ऐंठते। झटका चुनने पर मुट्ठी बन्द करके उँगली की गाँठ का एक ज़ोरदार झटका माथे पर पड़ता जिससे काफी देर तक सिर में भन्नाहट होती रहती। फादर कौक्स हथेली पर स्केल से मारते थे। यह शायद पिटाई करने का सबसे सभ्य तरीका था।

उस दिन फादर कौक्स बहुत गुस्सा थे। वो चुप थे पर उनकी आँखें बोल रही थीं। उन्होंने जॉर्ज के माथे पर एक ज़ोर का मुक्का मारा। खटाक की आवाज़ के साथ जॉर्ज का सिर झटके से पीछे फिंका गया। मुझे लगा कि वह अब रो देगा। उस का चेहरा बिलकुल रुआँसा था। पर जॉर्ज रोया नहीं। उसने अपने ऊपर काबू रखा और फिर सिर झुकाए, बिना इधर-उधर देखे अपनी सीट पर जाकर बैठ गया। अचानक मैं घबराया कि मेरे साथियों को न पता चले कि मैंने ही शिकायत की है।

फादर कौक्स के इतने भयंकर गुस्से के पीछे क्या कारण रहा होगा। क्या वह केवल अँग्रेज़ी भाषा के लिए एक गहरा प्रेम था जो कॉमिक्स से नफरत के रूप में उभरा। या जॉर्ज की हरकत उनको अपनी सत्ता पर चुनौती लगी थी। या फिर सज़ा देकर वो सुनिश्चित कर देना चाहते थे कि और कोई छात्र ऐसी

हिम्मत न करे। यह कहना मुश्किल है। कुछ साल बाद जब हम आठवीं में पहुँचे तो फादर कौक्स के रिहायशी कमरे में बेझिझक जाते और उन की पुस्तकों के संग्रह से पुस्तकें उधार लेते। बस शर्त यह होती कि पुस्तक पढ़कर फादर के साथ उस पर चर्चा करें। पर फादर से रिश्ते में यह बदलाव तो कई सालों बाद आया।

शिकायत करने की रात मुझे देर तक नींद नहीं आई। जॉर्ज का रुआँसा चेहरा मेरे सामने आता रहा। पता नहीं कब मेरी आँख लग गई। फिर कुछ दिन बीते। उस घटना की किसी ने बात नहीं की। मेरे अन्दर बेचैनी बनी रही। एक अपराध बोध था। साथ में डर भी था। अगर जॉर्ज को यह पता चल गया है कि शिकायत मैंने की थी तो क्या वह मुझसे बदला लेगा। मुझसे लड़ेगा। पर जॉर्ज ने ऐसा कुछ नहीं किया था। और धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य-सा हो गया। और फिर सर्दी की छुट्टियाँ आ गईं। जॉर्ज हॉस्टल के अन्य लड़कों की तरह अपने घर चला गया, और मैं छुट्टी बिताने अपने नाना-नानी के घर।

छुट्टियों के बाद जब स्कूल खुला तो हम अपनी क्लास में वापस आए। सब दोस्त बहुत दिनों के बाद मिल रहे थे। छुट्टियों के किस्से-कहानियाँ सुनाए जा रहे थे। हॉस्टल के लड़के जो नई चीज़ें और किताबें लाए थे, एक दूसरे को दिखा रहे थे। पढ़ाई गम्भीरता से शुरू होना बाकी थी।

तभी मैंने देखा कि लड़कों का एक छोटा समूह जॉर्ज को घेरे खड़ा है। जॉर्ज उन्हें कुछ दिखला रहा है। क्लास के और लड़के भी वहीं जमा होते गए। मैंने देखा जॉर्ज एक खिलौना रिवॉल्वर दोस्तों को दिखला रहा है। दिखने में एकदम असल लगती थी।

चमकदार, भारी, जैसी मैंने महँगी दुकानों के शोकेस में देखी थी और जिस को हाथ में लेने के लिए मेरा दिल मचला था। जॉर्ज बारी-बारी से रिवॉल्वर लड़कों को देता जो उसे हाथ में लेकर निशाना लगाते या घोड़ा दबा कर चलाते। फिर तारीफ करके जॉर्ज को वापस कर देते। जॉर्ज भी नए रिवॉल्वर को दिखाने में खुश था। मैं उस समूह से अलग खड़ा देख रहा था।

मेरा भी रिवॉल्वर देखने का मन हुआ पर जॉर्ज के पास जाने में हिचक थी। फादर कौक्स से जॉर्ज को सज़ा दिलवाए तीन महीने गुज़र चुके थे। लेकिन वह शिकायत अब भी मेरे ज़मीर पर बोझ बनी थी। इस पूरे समय में जॉर्ज ने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया था कि उसे पता है कि शिकायत मैंने की थी। हो सकता था उसे पता ही नहीं हो। इस विचार ने मुझे हिम्मत दी और रिवॉल्वर देखने की इच्छा ने मुझे भी जॉर्ज की तरफ बढ़ा दिया।

जब मैं रिवॉल्वर देखने गया तब तक सब उसे देख चुके थे और मैं शायद आखिरी था। रिवॉल्वर

जॉर्ज के हाथ में था और मैंने कुछ हिचकिचाते हुए उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया। जब जॉर्ज ने मुझे देखा तो वह रुका। उसका खिला हुआ चेहरा कुछ गम्भीर हो गया। और तब हल्के स्वर में उसने कहा, "तुम्हीं ने मेरी शिकायत की थी न।"

जॉर्ज को सब कुछ पता था। और पता कैसे नहीं चलता। मैंने पूरी क्लास के सामने जाकर उसकी शिकायत की थी। और अब जॉर्ज के पास मौका था मुझसे बदला निकालने का। वह मुझे रिवॉल्वर नहीं दिखलाएगा, यह सोच कर मैं आगे निकलने वाला था। तभी जॉर्ज बोला, "लो, तुम भी देखो।" यह कह कर उसने रिवॉल्वर मेरे हाथों में रख दी। उस का भाव कुछ बदल चुका था। अब उस की आँखों में एक अजीब-सा दुख और कुछ तनाव था। जैसे, मुझे सामने देखकर वह अपनी मार के दुख को फिर से महसूस कर रहा हो। पर सब कुछ जानते हुए भी उसके चेहरे पर गुस्सा नहीं आया था। उसने मुझे माफ कर दिया था।

रिवॉल्वर देखने की मेरी ख्वाहिश अब गायब हो चुकी थी। जल्दी से मैंने रिवॉल्वर जॉर्ज को वापस किया और कक्षा से बाहर निकल आया। मुझे याद नहीं कि जॉर्ज से मेरी फिर कभी बात हुई हो। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद जॉर्ज ने वह स्कूल छोड़ दिया था। मैं उससे फिर कभी नहीं मिला।

उस दिन को अब कई दशक बीत चुके हैं। पर जॉर्ज की वो दुखी आँखें आज भी मुझे तकती हैं। मैं अभी तक नहीं समझ पाया कि आठ साल के जॉर्ज में ऐसी ताकत कहाँ से आ गई कि उसने मुझे माफ कर दिया।

मेरा सफ़रनामा

डॉ. ए जे टी जॉनसिंह
चित्रः भार्गव कुलकर्णी
अनुवादः निधि गौड़

मेरी बचपन की यादों में मेरे गाँव अनैगुड़ी के नज़ारे आँखों के सामने आ जाते हैं। यह भारत के दक्षिणी छोर पर, बंगाल की खाड़ी के पास है। यहाँ मेरे दादा-दादी रहते थे।

नीले-हरे समन्दर में फेनिल पानी की अगुआई में लहरों का काली चट्टानों से मिलना और झाग का लुढ़ककर रेतीले किनारे पर चले जाना। लाल रेत के पहाड़ और सागर से गाँव तक चलते खजूर, अंजीर और गूलर के पेड़। सारदा छिपकलियाँ रेत के टीलों के बराबर दौड़ती हुईं; रिंग डोव के किलकिलाने की आवाज़ें और सफेद तीतरों की पुकार पूरे दृश्य में गूँजती हैं।

मेरा स्कूल नानगुनेरी में था। सांकर रेड्डिएर बोर्ड हाई स्कूल। यहाँ मेरे माता-पिता पढ़ाते थे। स्कूल की पढ़ाई तमिल में होती थी। नानगुनेरी कलक्कड़ पहाड़ों के इलाके में पड़ता है, जहाँ बारिश

छाई रहती है। यह पश्चिमी घाट का हिस्सा है। आज इसका कुछ हिस्सा कलक्कड़-मुंडनथुराई टाइगर रिज़र्व में शामिल है। उस समय शिकार की अनुमति थी। मेरे पिता छोटे शिकार का लाइसेंस सालाना 30 रुपए में ले लेते। मैं अपने दो भाइयों, सुन्दर और शेखर के साथ सफेद तीतरों, खरगोशों, बत्तखों और कलहंस का शिकार करता। घर के बने सादे उपकरणों से मछली पकड़ना हमें सबसे अच्छा लगता। जिली और जॉनी, हमारे दो कुत्ते इन शिकारों में हमारे साथ शामिल होते। जानवरों और शिकार में हमारी रुचि तब और भी बढ़ गई जब हमने नानगुनेरी पुस्तकालय में जिम कॉर्बेट की किताब 'मैन ईटर्स ऑफ कुमाऊँ' पढ़ी। इसे पढ़ने के बाद हमारी बातचीत अकसर आदमखोर बाघों और जिम कॉर्बेट की पकड़ी विशाल महसीर मछलियों पर होती।

कलक्कड़ पहाड़ों के कैम्पिंग ट्रिप्स भी हमें प्रकृति और जंगली जानवरों के करीब लाए। पिता और कुछ दोस्त हमेशा होते। कभी-कभी हमारी माँ और दोनों बहनें भी साथ चलतीं। तब हम खाली स्टॉफ क्वार्टर में रुकते जिसे अँग्रेज़ों ने जंगल के किनारे पर बनाया था। कभी-कभी हम खाने के लिए जंगली मुर्गी, खरगोश या पिसूरी हिरण का शिकार करते। जिम कॉर्बेट की लिखी आदमखोरों की कहानियाँ पढ़ने पर हमारी जंगल की यात्राएँ और भी रोमांचक हो गईं। हर चट्टान और झाड़ के पीछे आदमखोर बाघ या चीते की कल्पना करते। इन आदमखोरों की नज़र से बचने के लिए हम हमेशा कैंप फायर के समय फुसफुसाकर बात करते।

श्री जे.सी. डेनियल, निदेशक, बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी से मई 1971 में कलक्कड़ के पहाड़ों में मिलने के बाद मेरे जीवन में बड़ा बदलाव आया। जब उन्हें पता चला कि मैंने मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से जीव विज्ञान में विशारद हासिल की है तो उन्होंने मुझे वन्यजीवों पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने मुझे ढोल या एशियाई जंगली कुत्तों पर शोध में मदद की। यह शोध सिगूर के मुदुमलाई वन्य-जीव अभ्यारण्य में अमरीका के डॉ. माइकल फॉक्स के साथ किया गया था। इतनी बड़ी संख्या वाले हाथियों के रहवास से यह मेरी पहली पहचान थी। यहीं से मैंने हाथियों के जंगल में चलने की कला सीखी।

सिगूर जंगल के शोध के बाद मैंने दो साल ढोलों का अध्ययन किया। डेनियल ने इसमें मेरी काफी मदद की। बाँदीपुर में रहते हुए मेरे जीवन में एक और कमाल का मोड़ आया।

सत्तर के दशक के अन्त में, बाँदीपुर में समूह में रहने वाले ढोलों पर शोध चल रहा था। तब मैंने एक मज़ेदार व्यवहार देखा। समूह के ढोल, बच्चों को खिलाने के लिए उल्टी करते दिखे। ढोल के बच्चे दो महीने के होने तक अपनी माँद में ही रहते हैं। कभी-कभी उनकी माँ या फिर कोई और ढोल पहरा देने के लिए रुकता है। बाकी ढोल शिकार करने जाते हैं। शिकार से लौटकर कुछ ढोल सीधे बच्चों के पास जाते हैं। बच्चे वयस्क ढोल के मुँह के कोनों को काटकर, रिरियाकर और शिकायत कर उनसे मांस की उल्टी करवा देते हैं। एक बार मैं माँद के पास के एक पेड़ पर चढ़ा था। ढोल बच्चों को देख रहा था। यह उल्टी समतल चट्टान पर हुई। इसमें मीट के साथ कुछ पानी भी गिरा। बच्चों ने मीट तो खाया ही, पानी भी पी लिया। माँ के दूध से बच्चों को पानी मिल जाता है। शायद इसलिए मुझे कभी दो महीने से छोटे बच्चे पास के तालाब में पानी पीने जाते नहीं दिखे। दो महीने के हो जाने के बाद बच्चे माँद छोड़कर समूह के

साथ जाने के लिए तैयार हो जाते थे। जब बच्चे छोटे होते, पाँच-छह महीने तक, उन्हें एक जगह छोड़कर शिकार करने जाते हैं। उनके पास एक-दो ढोल पहरे के लिए रहते। जब शिकार मिल जाता है तब बच्चों को मरे हुए शिकार तक ले जाया जाता है। वहाँ सबसे पहले ये बच्चे शिकार का मज़ा लेते हैं। बच्चे खाते समय खूब लड़ाई करते। इनकी आवाज़ें 100 मीटर दूर तक सुनी जा सकती हैं।

वहीं पास ही के सिगूर इलाके में रहने वाले धारीदार लकड़बग्घे, अपने शिकार को माँद तक ले आते जहाँ वो अपने बच्चों को छोड़कर गए थे। एक बार माइकल फॉक्स और मैं लकड़बग्घे की माँद में घुस गए। ये एक गहरे नाले के पास किनारे पर थी। हम साही के हमले से बचने के लिए अपने मुँह के सामने ढाल लिए हुए थे। कई बार लकड़बग्घे की माँद में साही भी पनाह लेते हैं। यह माँद अन्दर से बहुत ही खुली थी। कम से कम दस लोग वहाँ थोड़ा झुक कर बैठ सकते थे। वहाँ साँभर हिरन की हड्डियाँ और माँस पड़ा था। पूरी माँद पिस्सू से भरी थी जो हम पर चढ़ गए। उन्होंने हमें बहुत जल्दबाज़ी में माँद से बाहर आने पर मजबूर कर दिया।

लोमड़ी और सियार एक ही साथी के साथ रहते पाए गए हैं। एक नर और एक मादा साथ में रहते हैं और अपने बच्चों को बड़ा करते हैं। नानगुनेरी में एक शाम मैं मदार के झाड़ के पीछे बैठा भारतीय लोमड़ी की माँद को देख रहा था। यह समतल ज़मीन पर थी। जल्दी ही घूस के बराबर तीन बच्चे निकल आए और खेलने लगे। फिर एक मादा लोमड़ी आई और बच्चे उसके पीछे दौड़े। दूध पीने लगे। फिर एक और मादा लोमड़ी आई और बच्चे उसका भी दूध पीने लगे। फिर नर बाहर आया। इस नर लोमड़ी के दो साथी थे। लोमड़ियों में यह पाया जाना दुर्लभ है। दोनों मादा बहनें हो सकती हैं।

1980 के दशक के आखिर और 1990 की शुरुआत में, मैं गीर जंगल के शेरों पर शोध कर रहा था। रवि चेल्लम हमारा शोध छात्र था। तब सस्न इलाके के पास दो गर्वीले नर धर्म और वीर रहते थे। वो इस करीब 150 वर्ग किलोमीटर में फैले इलाके के शहंशाह थे। यहीं 2-3 समूह मादा और बच्चों के भी थे। हमने धर्म पर रेडियो कॉलर लगाया हुआ था। हम आसानी से उन दोनों का पीछा कर सकते थे। वीर और धर्म में ताकत और हौसला उनके साथ रहने से था। उन्होंने और नर समूहों के साथ कई लड़ाइयाँ साथ में लड़ीं। हर बार जीते। बस गले के कुछ बालों का नुकसान हो जाता। और कुछ गहरे ज़ख्म हो जाते जो धीरे-धीरे भरने लगते। लेकिन निशान छोड़ जाते। अगस्त 1987 के एक दिन, वीर को गाँव के लोगों ने मार दिया। इसका धर्म पर बहुत बुरा असर पड़ा। जो धर्म तब तक बहुत बहादुर था अब अपने ही घर में भगौड़ा हो गया। उसके बाल चले गए और वह मादा जैसा दिखने लगा। दहाड़ना बन्द कर दिया और उसने घाटी के उन ठण्डे इलाकों में जाना बन्द कर दिया जहाँ और नर आते थे। जल्द ही वो अकेलेपन से, डर और भूख से मर गया। रवि को उसका नष्ट होता शरीर मिला। माँस के हिस्से और हड्डियाँ।

अप्रैल 1990 के बीच में एक हाथी राजाजी नेशनल पार्क से खेतों में खाने गया। और आदमी और जानवर के संघर्ष में एक आदमी मारा गया। गाँव वालों ने उसके पीछे दौड़-दौड़ कर उसे भगा दिया। हाथी गन्ने के खेत में छिप गया। अब तक पुलिस मौके पर आ गई थी। लोगों को शान्त करने के लिए उन्होंने गन्ने के खेत की तरफ गोलियाँ चलाईं। एक गोली

हाथी के पिछले दाएँ पैर पर लगी। इस घायल हाथी ने राजाजी पार्क में शरण ली। जब एक हथियारबन्द गार्ड के साथ मैं इसे देखने पहुँचा तब उसका घाव सूज कर छिलके वाले नारियल के आकार का हो गया था। खून और पस घाव में से निकल रहे थे। वह हाथी 45 साल का होगा। उसके दाँत की नोंक टूट गई थी। उसने हमें खुद से 15-20 फुट पास तक ही आने दिया। हम जब भी उसके पास जाते वो एकदम खड़ा हो जाता और अपने कान हिलाने लगता। जैसे, बस अभी हमला कर देगा। वन विभाग के स्टाफ ने उसकी खूब देखभाल की। उसकी चोट पर संक्रमण रोकने के लिए दवा छिड़की। मक्खियाँ भगाने के लिए भी। एंटी-बायोटिक दवाओं को चीनी वाले आटे की गोलियों के अन्दर डाल कर दिया और खूब सारा गन्ना भी खाने के लिए दिया। हाथी को हाथी दाँत के चोरों से और दूसरे हाथियों के हमले से बचाने के लिए कुछ गार्ड पास ही कैम्प लगाकर पहरा देते। हाथी से बहुत दूर नहीं। रात में भी फायर के साथ। घाव अब भरने लगा था। हाथी भी खाने और ताल से पीने के लिए थोड़ा चल-फिरने लगा था। हम सबने राहत की साँस ली। अब हाथी का पहरा देने की ज़रूरत नहीं। लेकिन उसका अन्त बहुत ही अनपेक्षित और दुखद था। एक रात किसी और हाथी के हाथों वह मारा गया।

1980 के दशक की शुरुआत में, राजाजी नेशनल पार्क के पश्चिमी हिस्से में कम से कम 20 बाघ थे। गंगा नदी के पश्चिम में स्थित इस इलाके

की खासियत है शिवालिक की पहाड़ियाँ। और इस शिवालिक रेंज की खासियत है भाभर घास, जो यहाँ खूब मिलती है। पार्क की सीमा से लगे गाँव के गरीब लोग शिवालिक की पहाड़ियों में सर्दियों में घास काटने आते। इसकी रस्सी बनाकर बेची जाती है। यह मेहनत का काम है लेकिन पैसा बहुत कम मिलता है। लोग गरीबी के कारण ही इस काम को करते थे।

लेकिन इनसे परेशानी ये थी कि ये बाघ और चीते के शिकारों को चुरा लेते। पहाड़ी के ऊपरी तरफ घास काटते समय ये जंगली कौवे को उड़ते हुए नीचे उतरते देख लेते। किसी के शिकार हुए होने का यह अच्छा इशारा होता। कौवे को देखते ही वो घास काटना बन्द कर देते। और शिकार ढूँढने निकल जाते। अकसर वो शिकार ढूँढने में सफल रहते और उसे ले जाते। अकसर यह साँभर होता। क्योंकि बाघ भी साँभर को एक रात में पूरा नहीं खा सकता। अगर दो दिन पुराना शिकार भी हो तो शिवालिक की जमाने वाली सर्दी में मांस खराब नहीं होता। गर्भवती बाघिन या फिर बच्चों को पाल रही बाघिन को लिए खाने की यह चोरी खासतौर पर मुश्किल में डाल जाती होगी।

मेरी घुमक्कड़ी तीन किताबें लिखने में बहुत काम आई। ये किताबें हैं, 'फील्ड डेज़ - नेचुरलिस्ट्स जर्नी थ्रू साउथ एंड साउथ ईस्ट एशिया', 'वाकिंग थ्रू द वेस्टर्न घाट' और 'ऑन जिम कॉर्बेट्स ट्रेल एंड अदर टेल्स फ्रॉम द जंगल।'

मालगाड़ी

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

मालगाड़ी से दो मोटे आदमी उतरे। ये आदमी इतने मोटे थे कि मालगाड़ी से ही उतर सकते थे। किसी ने उन्हें उतरते नहीं देखा था। सुबह के दस बज रहे होंगे। आसपास के खेतों में लोग काम कर रहे थे। धूप थी। सुहाना मौसम था। थोड़ी दूर पर एक गाँव था - कोलकी। कोलकी पतली गली को कहते हैं।

गाँव की ओर जाने की एक पगडण्डी थी। दोनों मोटे उसी पगडण्डी पर आगे-पीछे गाँव की तरफ चल पड़े। आगे जा कर पगडण्डी चौड़ी हो गई थी और एक पतली सड़क की तरह दिख रही थी। वहीं पर किनारे खम्बे के ऊपर एक तख्ती पर 'गाँव कोलकी' लिखा था।

गाय-बैलों के झुण्ड के पास दोनों मोटू पहुँचे तो सब बिदक गए और पूँछ उठाकर भाग गए। दोनों मोटू भी इससे चौंक गए थे। दोनों अपनी धुन में जा रहे थे।

कोलकी इतनी पतली थी कि गाँव के लोग आगे-पीछे होकर ही निकलते। गाय-बैल भी। पूरा गाँव कोलकी का गाँव था। कोलकी के दोराहे, चौराहे भी थे। तीन राह की भी कोलकी थी। ऊपर से देखने पर यह गाँव एक खेल के बिसात की तरह दिखता था कि कोलकी पर चल रहा कौन, कहाँ से निकलेगा बता पाना मुश्किल था। सभी रास्ते शीघ्र पहुँचने के रास्ते थे। दूरियाँ सिमट गईं थीं। गाँव के अन्दर जिधर से भी जाओ, वह कहीं भी पहुँचने का नज़दीकी रास्ता होगा। औरतें सिर पर टोकनी बोहे, सामान बोहे निकलते दिखतीं, तो बच्चों को कँधे पर बैठाकर जाते हुए भी दिखतीं।

पहली गली जहाँ पर गाँव का नाम लिखा खम्बा था, वह गली एकदम सीधी थी। उस गली से साइकिल पर लड़के सर्कस दिखाते हुए, घण्टी बजाते भी निकल जाते।

गाँव के लोग दोनों मोटू से बचकर निकलने की कोशिश करते थे। कोलकी में घुस रहे एक आदमी को मोटू ने आवाज़ देकर रोका। कहा, "गाँव के अन्दर जाना है। भूख लगी है।"

गाँव वाले ने कहा, "गाँव में होटल नहीं है। अन्दर घुसोगे तो फँस जाओगे। बाहर पेड़ के नीचे रुक जाओ। हम खाना लेकर आते हैं। दुबले होते तो ठीक था।"

गाँव वाला ने आठ-दस घरों में बना खाना उनके लिए लाया। दोनों ने खाया। दोनों सो गए। रात को भूख लगी तो उठ गए। भूख बर्दाश्त नहीं हो रही थी तो गाँव के अन्दर घुसना चाहा।

मालगाड़ी पर जब मोटू चढ़ा था तब एक बिल्ली भी चढ़ी थी। उसे चूहे की गँध आ रही थी। जब मोटू उतरा था तो बिल्ली भी मोटू के पीछे लग गई थी। उसे चूहे की गँध आ रही थी।

मोटू कोलकी में घुसे कि किसी घर में खाने को कुछ मिल जाएगा। वे दोनों पहली कोलकी में ही घुसे थे। पहले जो मोटू घुसा बड़ी कठिनाई से चार कदम अन्दर घुस पाया और इस तरह फँसा कि न आगे जा सकता था, न पीछे। उसने दूसरे मोटू को पुकारा कि किसी तरह खींच कर या ठेल कर उसे बाहर निकाल दे। हिचकते हुए दूसरा मोटू घुसा। वह कुछ ज़्यादा मोटा था। दो कदम कोलकी के अन्दर जा पाया। वह भी बुरी तरह फँस गया। उसने एक पैर उठाकर सामने वाले मोटू को ठेलने की कोशिश की। उसका पैर उस तक पहुँच नहीं पाया।

घर की दीवाल पर चढ़ी हुई वही बिल्ली तब वहाँ आई। उनके पीछे लगी थी। फँसे हुए दोनों डरे। और चूहे जैसा डरे। इतना डरे कि चूहा बन गए। और उन्हें नीचे दीवाल पर एक भुलका दिखा। भुलका छेद को कहते हैं। उसके अन्दर वे दोनों बिल बनाकर घुस गए।

मालगाड़ी जब भी कोलकी गाँव के पास बिना कारण रुकी दिखती तब उससे कोई न कोई ज़रूर उतरता। एक दिन एक मेंढक कूदकर उतरा। मेंढक उछलते-कूदते, सुस्ताते गाँव की पहली कोलकी तक पहुँच गया। वहाँ लगे खम्बे पर चढ़कर सिर ऊँचा कर गाँव का नाम पढ़ा, जैसे वही गाँव है न! फिर वह कोलकी में घुस गया।

क्या! तुम विश्वास करोगे, दो झींगुर भी कूदकर मालगाड़ी से उतरे थे। फिर एक दिन मालगाड़ी जो घण्टों रुकती थी, धड़धड़ाते आई। सबने देखा मालगाड़ी की छत पर सफर करते हुए बगुले बैठे थे। बगुलों को आसपास जहाँ नदी, तालाब, नाला दिखाई देता पेट भरने मालगाड़ी की छत से उड़कर वे वहाँ उतर जाते। तालाब, नालों पर पहले से बैठे बगुले इसलिए भी इन्तज़ार करते हुए बैठे थे कि मालगाड़ी आएगी तो उसकी छत पर बैठकर जाएँगे। और, जब मालगाड़ी आई वे सब उसकी छत पर जाकर बैठ गए।

मालगाड़ी के चलने से आकाश थोड़ा सुनसान हो गया था। मालगाड़ी की छत पर बैठकर अब पक्षी भी सफर करने लगे थे। क्या तुम विश्वास करोगे?

अन्त में –

गाँव कोलकी पास
मालगाड़ी से
उतरे दो आदमी
मोटे खासे
चूहे जैसे डरपोक
उतरी फिर उनके पीछे
बिल्ली दुबली एक

उतरे दो झिंगुर
कूदकर उतरा मेंढक

चटपटी लाल मिर्च की
बोरियों से भरी कहानी की
इस मालगाड़ी से
करती मिर्च की धाँस सफर
पढ़ने से आती छींक कभी
तब दिखता झींगुर, मेंढक

आसपास के सारे पक्षियों ने
उड़ना छोड़ दिया
मालगाड़ी की छत पर बैठे
जाते दिखते हैं,
उड़ती दिखती हैं
उनकी खबर।

कार्टून: राजेन्द्र घोड़पकर

एक खरीदार मेरी कपड़े की दुकान पर आया और कहने लगा कि मुझे वही पैंट चाहिए जो आज के अखबार के एक विज्ञापन में आई है। मैंने कहा कि हमने आज के अखबार में कोई विज्ञापन नहीं दिया। उसने अखबार दिखाया। उसमें एक दूसरी दुकान का विज्ञापन था। चिढ़ कर उसने कहा, "मेरे अखबार में तो इसी दुकान का विज्ञापन था!"

एडवर्ड ओपनहायमर

चित्र: वसुन्धरा अरोरा
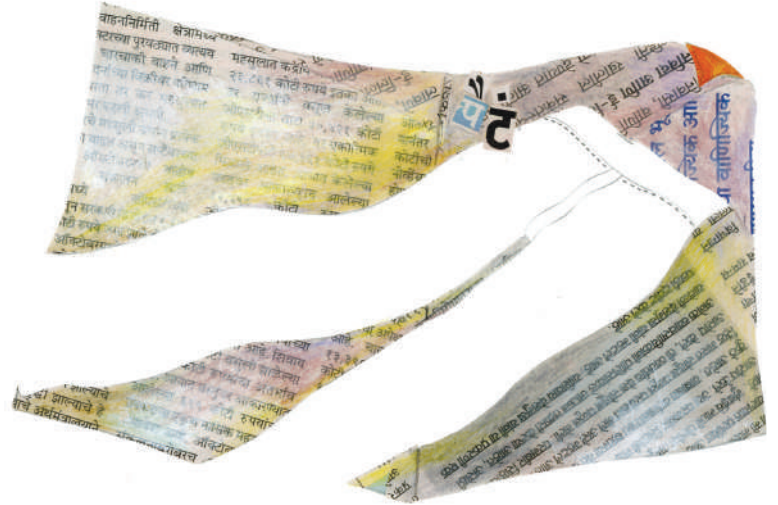
माँ मुझे बताओ

सुधीर

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

कभी बता क्या तूने कूता?
क्यों करता है मेरा जूता?
माँ, चरमर-चरमर चरर-चरर।

क्यों मीठा पानी का सोता-
जगता रहता कभी न सोता?
माँ, बहता झरमर झरर-झरर।

जब काले बादल छहराते,
वे क्यों रह-रह कर घहराते?
माँ, घरमर-घरमर घरर-घरर।

जब कोई बात बिगड़ जाती,
तू क्यों मुझ पर गुस्सा खाती?
माँ, तरमर-तरमर तरर-तरर।

जूते की आवाज़

कृष्ण कुमार

'बालसखा' 1917 में निकलना शुरू हुई थी। उसके शुरुआती 20-25 वर्षों के अंक टटोले जाएँ तो यह कविता ज़रूर दिखेगी। ऐसे परिश्रम के अभाव में अनुमान ही लगाया जा सकता है कि यह कविता उन दशकों में लिखी गई होगी। इस अनुमान के कुछेक आधार कविता में छिपे हुए हैं। चमड़े के जूते छोटे लड़कों को कम ही पहनाए जाते थे। आवाज़ करने वाले जूते ग्रामीण बड़े-बूढ़ों के पैरों में पिछली सदी के उत्तरार्ध में काफी समय तक दिखते रहे, पर बच्चों के पैरों में जूते-चप्पल स्कूली शिक्षा के विस्तार से जुड़ी कहानी है, वरना नंगे पैर भागा-दौड़ी या खेत में काम करना बचपन की सामान्य कहानी है। लड़कियों के पैरों में जूता तभी आया जब कैनवास के जूते बनने लगे। चमड़े का जूता हाथ का बना हो या फैक्टरी का, किसी छोटी लड़की के पैरों में हो और वह आवाज़ करे जिसके कारण को लेकर वह माँ से सवाल करे, यह बीसवीं सदी के सामाजिक इतिहास में हिन्दी प्रान्तों में सम्भव नहीं था। इस इतिहास की एक छोटी-सी और सुन्दर झलक इस कविता में मिलती है।

चूँकि हम इसके रचयिता सुधीर के बारे में भी कुछ नहीं जानते हैं, इसलिए उनकी काव्य-सामर्थ्य के चिह्न हमें इसी कविता में पहचानने होंगे। 'माँ' को तीसरी पंक्ति के शुरू में रख कर जो हल्का-सा अन्तराल बनता है, अपने कामों में व्यस्त माँ का ध्यान खींचने की तरकीब बन जाता है। यह क्रम पूरी कविता में चलता है, पर बच्चे की राजनीति आखिरी तीन पंक्तियों में ही प्रकट होती है। जूते के बाद ज़मीन के नीचे से बाहर आते पानी, फिर आकाश में बादलों की घुमड़ के बाद आखिर में माँ के गुस्से की आवाज़ आती है। यह अन्तिम आवाज़ डाँट की है या चाँटों की, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि माँ, पिता या शिक्षक का गुस्सा छोटे बच्चे के कानों में मार जैसा अनुभव ही बनता है। पिटने के लिए कोई सुविधाजनक अंग प्रकृति ने नहीं बनाया है, पर बड़ों का हाथ पहले गालों पर ही पड़ता है और उस क्षण की आवाज़ 'तरमर-तरमर तरर-तरर' लगती है। इस आखिरी अन्तरे का तर्क पहले के तीन अन्तरों से एकदम अलग है। जूते और सोते की आवाज़ बादलों की तरह स्वाभाविक रूप से पैदा होती है, पर गुस्से की आवाज़ का कारण या स्रोत किसी बात के अपने आप बिगड़ जाने में है जिसकी ज़िम्मेदारी बगैर जाँच-पड़ताल के बच्चे पर आ जाती है। इस जटिल शिकायती भाव को कवि ने अनायास कोमलता के साथ पकड़ा है।

'कूता' और 'छहराना' जैसे शब्द अब बहुत कम सुनाई पड़ते हैं। हिन्दी के अनेक शब्द हमारी ज़ुबान के सिकुड़ते व्यावहारिक और शैक्षिक जगत की दास्तान कहते हैं। यह कहानी साहित्य को ध्यान से पढ़कर सुनी जा सकती है। रोज़मर्रा के इस्तेमाल से वंचित शब्द भले शब्दकोश में सुरक्षित पड़े रहें, ज़िन्दा वे तभी होते हैं जब वे हमें कविता या कहानी के सम्वाद में मिलते हैं।

विश्व कप का सर्वश्रेष्ठ गोल

सोपान जोशी
चित्रः एलन शॉ

छोटों की सुनता ही कौन है! फिर डिएगो तो सत्रह साल का किशोर था!

उसकी असाधारण प्रतिभा हर किसी को दिखती थी। उसे 'सुनहरा बालक' कहा जाता था। फुटबॉल उसके पैरों पर नाचती थी। वह बचपन से ही अपने से उम्र में बड़े खिलाड़ियों को ऐसे छकाता था जैसे मँझे हुए सूरमा बच्चों को चकमा देते हैं। 1978 के विश्व कप के लिए अर्जेंटीना का फुटबॉल दल चुना जा रहा था। डिएगो बेताब था अपने ही देश में विश्व कप खेलने के लिए, जीतने के लिए। फुटबॉल विश्व कप से बड़ी कोई दूसरी खेल प्रतियोगिता नहीं है।

उस समय विश्व कप एक बार यूरोप में और एक बार दक्षिण अमेरिका में होता था। 1974 की प्रतियोगिता पश्चिम जर्मनी में हुई थी और मेज़बान देश ने ही इसे जीता था। अब विश्व कप अर्जेंटीना में होना था। उस साल अपनी ही राजधानी में अर्जेंटीना ने अपना पहला फुटबॉल विश्व कप जीता। पर किशोर डिएगो उस टीम में नहीं था। उसे कच्ची मिट्टी मान कर बाहर छोड़ दिया गया!

अगला विश्व कप 1982 में स्पेन में हुआ। अब तक 21 साल का डिएगो दुनिया का सबसे प्रसिद्ध और महँगा खिलाड़ी बन चुका था। उसे टीम से बाहर

रखने का सवाल ही नहीं था। लेकिन वह चमक न सका। अर्जेंटीना से खेलने वाली हर टीम अपने एक खिलाड़ी को केवल एक काम पर लगा देती थी - डिएगो को अड़ंगी लगाना, उसे गिराना और खेलने न देना!

अर्जेंटीना इस समय एक राष्ट्रीय अपमान से जूझ रहा था। देश के दक्षिणी छोर के पास फॉकलैंड्स नामक एक द्वीप समूह है। इसे लेकर ब्रिटेन और अर्जेंटीना के बीच कोई दो महीने का युद्ध चला था। जिस दिन अर्जेंटीना को 1982 के विश्व कप का पहला मैच खेलना था, उसके एक दिन बाद ही इन द्वीपों पर उतरी उसकी सेना ने ब्रिटेन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था। लगभग 12,500 किलोमीटर दूर इंग्लैंड से आई नौसेना अर्जेंटीना के अपने तट पर भारी पड़ गई थी। देश में मायूसी और उथल-पुथल थी।

विश्व कप में यह डर था कि अगर अर्जेंटीना और इंग्लैंड दोनों एक दूसरे से भिड़े तो युद्ध की छाया खेल तक आ जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दोनों ही टीमें दूसरे चरण में प्रतियोगिता से बाहर हो गईं। लेकिन जब अगला विश्व कप 1986 में मेक्सिको में हुआ, तब क्वार्टरफाइनल में इंग्लैंड का सामना अर्जेंटीना से हुआ। मैदान में खासा तनाव था। डर था कहीं दोनों देशों के समर्थक चार साल पुराने युद्ध की वजह से मारपीट पर न उतर आएँ। इस मैच के लिए बड़ी संख्या में रक्षा बल तैनात हुए थे।

अब डिएगो 25 बरस की उम्र में अपनी राष्ट्रीय टीम का कप्तान था। मैच के 51वें मिनट में गेंद उछल के इंग्लैंड के गोलकीपर की तरफ जा रही थी। उसका कद छह-फुट-एक-इंच था। वह गेंद को लपक पाता, इसके पहले ही पाँच फुट पाँच इंच का डिएगो नीचे से उछलता हुआ आया और गेंद को ठेल के गोल में पहुँचा दिया। पास में खड़े सभी खिलाड़ियों को दिखा था कि डिएगो ने गेंद अपने हाथ से ठेली थी, जो खेल के नियमों के अनुसार गलत था। पर रेफरी को दूर से यह दिखा नहीं। उसे लगा कि डिएगो ने अपने सिर से गेंद को गोल में डाला है। उसने अर्जेंटीना का गोल मान लिया। डिएगो भागता हुआ अपने साथियों की बाजुओं में समा गया और अपने गोल की खुशी मनाने लगा। उसने अपनी बेईमानी छिपा ली थी।

बाद में जब डिएगो से उसके छल-कपट के बारे में पूछा गया, तो उसने कहा कि उस गोल के पीछे भगवान का हाथ था। अर्जेंटीना के समर्थकों को यह और भी अच्छा लगा कि डिएगो का गोल धोखे से हुआ था। दक्षिण अमेरिका के गरीब देशों में बड़ी संख्या में फुटबॉल खिलाड़ी तंगहाली से आते हैं। उनका खेलना सड़कों पर होता है, जहाँ हर तरह की मार-पीट और बेईमानी चलती है। ऐसे खिलाड़ियों को बचपन से खेल के नियम सिखाने वाले प्रशिक्षक नहीं मिलते हैं, जैसा यूरोप के अमीर देशों में होता है। डिएगो ऐसा ही खिलाड़ी था। फिर ब्रिटेन से युद्ध हार चुके अर्जेंटीना में इसका और भी उत्साह था कि डिएगो की खुली बेईमानी के बावजूद इंग्लैंड कुछ नहीं कर सका। अपने देश के समर्थकों में अपनी चालबाज़ी की वजह से डिएगो और भी प्रिय हो गया था। खेल और राष्ट्रवाद का सम्बन्ध ऐसा ही होता है!

लेकिन इस गोल के चार मिनट बाद ही डिएगो ने कुछ ऐसा किया कि उसने सारी दुनिया का दिल जीत लिया। इंग्लैंड के खिलाड़ियों और समर्थकों का भी! जब 55वें मिनट में डिएगो को गेंद मिली, तब वह अपने पाले के भीतर था। हाफ-लाइन से पन्द्रह फीट

पीछे। मैदान के दाहिने हिस्से में। उसके दाईं और बाईं तरफ इंग्लैंड के एक-एक खिलाड़ी थे। एक तीसरा खिलाड़ी उसके आगे खड़ा था और चौथा किनारे से उसकी ओर दौड़ के आ रहा था।

पहले डिएगो ने गेंद अपने गोल की तरफ उलटी ठेली। और दोनों बगल के खिलाड़ियों को अपने पास आने दिया, और फिर नटराज की तरह फिरकी लगाई। जब वह घूमा तब तीनों खिलाड़ी उसके पीछे थे दोनों बगल के खिलाड़ी और किनारे से भाग के आता हुआ तीसरा भी। अब वह इंग्लैंड के गोल की तरफ तेज़ी से दौड़ने लगा था। सामने खड़ा चौथा खिलाड़ी पहले पीछे हटता गया, फिर डिएगो को रोकने के लिए आया। डिएगो ने दौड़ते हुए अपना वज़न दाईं ओर झुकाया। जैसे ही वह चौथा उस तरफ मुड़ा, वैसे ही डिएगो बाईं ओर दौड़ता हुआ आगे निकल गया।

अब डिएगो इंग्लैंड के पेनल्टी बॉक्स के पास पहुँच चुका था। पाँचवाँ खिलाड़ी रक्षात्मक पंक्ति से उसे चुनौती देने के लिए आगे आया। डिएगो ने अपना वज़न बाईं तरफ झुकाया, जैसे वह गोल की तरफ भागने वाला है। जैसे ही रक्षात्मक खिलाड़ी उसे गोल की तरफ आने से रोकने को तैयार हुआ, वैसे ही डिएगो दाईं तरफ दौड़ गया। वह पेनल्टी बॉक्स के भीतर पहुँच गया था।

डिएगो दाईं तरफ निकल तो गया, किन्तु इस समय तक जिस चौथे खिलाड़ी को उसने पहले चकमा दिया था, वह उसकी दाहिनी तरफ तेज़ी से दौड़ता हुआ गेंद के पास आ रहा था। यही नहीं, गोलकीपर अपनी लाइन छोड़के गेंद की तरफ आ रहा था। और एक और रक्षात्मक खिलाड़ी – छठवाँ!

गोलकीपर के पीछे दौड़ रहा था। उस क्षण ऐसा लग रहा था कि दाईं ओर से पीछे आता चौथा खिलाड़ी और सामने से आता गोलकीपर मिल के डिएगो को गेंद से हटा देंगे! अगर हटा नहीं भी सके, तो रक्षात्मक खिलाड़ियों ने उसे गोल से दूर दाहिनी ओर जाने के लिए मजबूर तो कर ही दिया था।

पहले डिएगो दौड़ के आते गोलकीपर के सामने बाईं ओर मुड़ने लगा। गोलकीपर अपनी दाईं तरफ

झुका कि गेंद को गोल की ओर जाने से रोक ले। डिएगो आखिरी पल में अचानक दाहिनी तरफ मुड़ गया। गोलकीपर को छका के मैदान पर गिरने के लिए मजबूर करते हुए। तब तक दाईं ओर से आता खिलाड़ी गेंद को लपकने आ चुका था। अब डिएगो बाईं तरफ घूमा। उसका शरीर दाईं ओर से आते हुए खिलाड़ी और गेंद के बीच में था। इसलिए वह खिलाड़ी उसे गिराए बिना गेंद छीन नहीं सकता था। फिर इस आखिरी फिरकी से गेंद उसके मज़बूत बाएँ पैर पर आ चुकी थी।

अपने शरीर से पीछे के खिलाड़ी को रोकते हुए, उसके दबाव में दाईं ओर गिरते हुए, अपने बाएँ पैर से डिएगो ने गेंद को गोल की तरफ मारा। कोण बारीक था किन्तु अब डिएगो और गोल के बीच कोई बचा नहीं था। इस गोल के लिए उसने गेंद को अपने पैरों से 11 बार छुआ था और मैदान की आधे से ज़्यादा दूरी तेज़ी से भाग के तय की थी। उसने इंग्लैंड के पाँच खिलाड़ियों को चकमा दिया था और गोलकीपर को मैदान पर पसरा हुआ छोड़ दिया था।

उस इंग्लैंड की टीम में जो खिलाड़ी दूर से इन करिश्माई गोल को देख रहे थे, उन्होंने बाद में कहा कि वे जितने हताश थे उतने ही हतप्रभ भी थे। एक ने तो यहाँ तक कहा कि उसकी इच्छा हो रही थी कि जाके डिएगो से हाथ मिलाए। इस गोल को आज तक विश्व कप का सबसे बेहतरीन गोल माना जाता है। डिएगो ने जिस धोखेबाज़ी से पहला गोल किया था, उसे चार मिनट बाद ही सब भूल चुके थे। हर किसी को यह अहसास हुआ था कि उन्होंने जो भी देखा, उसे सालों-साल याद किया जाएगा। केवल अपने देश के फुटबॉल चाहने वालों में ही नहीं, अब डिएगो सारी दुनिया में फुटबॉल और खेल-कूद के चाहने वालों के दिल में बस चुका था।

इंग्लैंड से क्वार्टरफाइनल जीतने के बाद अर्जेंटीना का मुकाबला सेमीफाइनल में बेलजियम से

हुआ। यहाँ भी डिएगो ने दो गोल दागे। फाइनल में पश्चिम जर्मनी की टीम में डिएगो का इतना डर था कि वह हर हाल में उसे रोकने को आमादा थी। इसका फायदा अर्जेंटीना के दूसरे खिलाड़ियों को हुआ, जिनकी ओर जर्मन टीम का ध्यान नहीं था। विश्व कप फाइनल में अर्जेंटीना ने 3-2 से पश्चिम जर्मनी को हरा दिया था। किसी एक अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता में एक खिलाड़ी की अनोखी प्रतिभा की ऐसी छाप न इसके पहले पड़ी थी, न इसके बाद ही।

इस घटना को 36 साल बीत चुके हैं। उस एक गोल के दम पर आज भी खेल संसार के दिल पर डिएगो मैराडोना का राज है, उनकी मौत के डेढ़ साल बाद भी। उसे याद करते हुए आज भी हम भक्ति कवि बिहारी का दोहा याद कर सकते हैं -

सतसैया को दोहरा, ज्यौं नावक को तीर।
देखन को छोटो लगै, घाव करे गम्भीर?

एक शरारती भिक्षु

कहानी और चित्र : ऋषि साहनी

दूर से दूर, आसमान छूते पहाड़ों में एक छोटा-सा मोनेस्ट्री स्कूल था। जो पहाड़ों में खोया-खोया रहता था। यहाँ प्रार्थनाएँ होतीं। होतीं और ड्रम की आवाज़ों में घुलकर इन पहाड़ों में समा जातीं। डूब जातीं। सबेरा अपनी रोशनी से इसे उघाड़ देता। यह दिखाई देने लग जाता। और यहाँ देखता भी कौन? न आसपास कोई गाँव था न ही कोई सैलानी इस तरफ नज़र आता। बहुत छोटी उमर में ही बच्चे यहाँ आ जाते। इससे उन्हें भिक्षु जीवन उतारने में आसानी होती। और वे जीवन भर इसे अपना पाते थे।

काको अभी अभी यहाँ आया था। सबसे छोटा भिक्षु। और सबसे ज़्यादा शरारती।

उसके पैरों में जैसे चक्का लगा था। गलियारे उसके दौड़ने की आवाज़ से भरे रहते। सब ध्यान कर रहे होते तब भी उसकी आवाज़ आती रहती। लकड़ी की बनी मोनेस्ट्री पर उसके तलवों की थाप आती रहती। कभी-कभी वह मास्टर के पीछे-पीछे दबे पाँव चलता दिखता। मास्टर की मुद्राओं की नकल करता फिरता। कभी अच्छी खासी प्रार्थना के बीच ड्रम को इतना बेसुरा बजाता कि पूरी लय टूट जाती।

मास्टर उसकी हरकतों पर मुस्कराते रहते। उन्हें वह अच्छा लगता। उसका साथ। जब किसी विषय पर गहराई से बात होने लग जाती तो उसे उबासियाँ आने लगतीं। कभी-कभी झपकी ही आ जाती।

हरकत एक न थी। कभी जब सब खाना खा रहे होते तो वह सबकी चप्पलें छिपा रहा होता। फिर पूरी मोनेस्ट्री अपनी-अपनी चप्पलों की ढुँढाई में लग जाती।

शामें सर्द हुआ करतीं। पहाड़ी कौए मोनेस्ट्री के ऊपर मँडराते रहते। मास्टर दोनों मुट्ठियाँ खोलकर बैठ जाते। कौए बेझिझक आते रहते और उनकी हथेलियों पर फैले दाने लेकर उड़ते रहते। दाने चुगने सैंकड़ों कौए आते। काको हैरानी से यह सब देख रहा था। उसका भी मन हुआ कि वो भी मास्टर की तरह हथेलियों में दाने रख कौओं को खिलाए। एक दिन वह मास्टर जी के सामने जा खड़ा हुआ। मास्टर जी ने पूछा कि क्या वो भी कौओं को दाने चुगाना चाहता है? काको ने बहुत ही मासूमियत से हामी भर दी। उन्हें एकाएक भरोसा नहीं हुआ। लेकिन फिर भी उन्होंने सारे दाने काको को दिए और अपने कमरे में चले गए।

काको ने कौवों को खिलाने के लिए अपनी हथेलियाँ पसार दीं। जैसे, उसके मास्टर फैला दिया करते थे। लेकिन उन्हें चुगने एक भी कौवा नहीं आया। पहले-पहल वह मुस्कराता रहा। लेकिन जब कुछ देर बाद भी कोई कौआ नहीं आया तो वह अधीर हो गया। ज़ोर-ज़ोर से आसमान में हाथ हिलाने लगा कि शायद कौओं की नज़र दानों पर पड़ जाए। लेकिन कौए न आए तो न ही आए।

कौए अब जाकर छत पर बैठ गए थे। काको ने सारे दाने हथेली से झटकार दिए। और वहाँ से चला गया। ज़मीन पर बिखरे दाने चुगने कौए अदेर वहाँ आ गए। काको यह देख और चिढ़ गया। उसने उन्हें वहाँ से उड़ा दिया। मास्टर दूर खड़े यह सब देख रहे थे।

काको उनके पास दौड़ा पहुँचा। पूछा, "कौवों ने मेरे हाथ से दाने क्यों नहीं खाए?" मास्टर को लगा कि यह अच्छा मौका है। उन्होंने कहा कि अगर वो पढ़ाई में और दूसरे कामों में मन लगाए तो शायद कौए उसके पास दाना चुगने आ जाएँगे।

काको ने बहुत सोचने के बाद आखिर इस बात को जैसे मान लिया।

इन पहाड़ों की रातें अच्छी-खासी सर्द हुआ करती हैं। मास्टर रात में मोनेस्ट्री का चक्कर लगाते हैं। उन्होंने पाया कि सिर्फ काको के कमरे में उजाला था। यह उजाला लैम्प का उजाला नहीं था। तो क्या काको ने कोई नई कारस्तानी कर दी है?

अगले कुछ दिन मोनेस्ट्री में हर कोई हैरत में था। काको एकदम बदल चुका था। वह जल्दी उठता। चाय नाश्ते में अपने मास्टर का हाथ बँटाता। क्लास में जल्दी पहुँचता। दिल लगाकर प्रार्थना पढ़ता। और दिन भर शान्त बना रहता।

जैसे, वो अन्दर से खुश हो।

अचानक आए बदलाव के बारे में कुछ यह भी सोचते कि जाने कब काको कोई हरकत कर दे। सन्देह तो था मगर फिर भी सब उसके बदलाव से सुकून में थे। मोनेस्ट्री पर अब आमतौर पर एक गहरी शान्ति पसरी रहती। तब कभी-कभी किसी-किसी को काको की मस्तियाँ याद आतीं। और उस चुप्पी में एक मुस्कराहट चमक उठती।

यह भी एक शाम थी। काको हथेलियों में दाने लिए शान्त बैठा था। कौवे एकदम पास उड़ रहे थे। लेकिन किसी का ध्यान उन दानों की तरफ नहीं था। वे दूसरे भिक्षुओं के पास आ जा रहे थे। दाना चुग रहे थे। लेकिन काको के पास कोई नहीं आ रहा था।

मास्टर उसके पास आए। उसके कान में मद्धिम

आवाज़ आई, "तुम बस कुछ समय अच्छे रहे लेकिन देखो यहाँ तो अनगिनत कौए हैं!"

काको ने खुद को और तराशा। वह अब हमेशा मोनेस्ट्री के सलीकों से रहता। लेकिन कौओं के व्यवहार में कोई फर्क नहीं आया। काको की हथेलियाँ फैली रहतीं मगर कोई कौआ न आता। वह हर शाम इन्तज़ार करता।

हर रात उसके कमरे में उजाला गहराता जा रहा था।

दिन गए, माह गए और साल गए। मगर कहानी यही रही। वह अब भी हथेलियों में दाने फैलाए उस शाम का इन्तज़ार करता जब कौए उसके पास दाने चुगने चले आएँगे।

काको अब बूढ़ा हो रहा था। उसकी मुस्कराहट पहले से ज़्यादा गहरी हो गई थी। रात में उसके कमरे के उजाले के सामने चाँदनी फीकी दिखती।

शामें वैसी ही आती रहीं। जाती रहीं। वह दाने चुगाने बैठा रहता। लेकिन कौए न आते तो न आते। मोनास्ट्री में सबको यह बात कचोट जाती। लेकिन काको इससे बेखबर बना रहता। वह खुश दिखता।

अब तो हर समय उसकी मुट्ठियों में दाने रहते। रात में सोते हुए उसकी खुली पड़ी हथेलियों में दाने

बिखरे रहते। और रात में भी कौओं के आने का इन्तज़ार करते रहते। उसका कमरा दिन-ब-दिन और उज्जवल होता जाता था।

कुछ साल और बीते। वह अब काको से काको मास्टर हो गया था। वह अब अपने शिष्यों के हाथों से कौओं को दाना चुगते देखता। देखता और खुशी से झूम उठता। फिर कौओं को देखता। मुस्कराता। और फिर अपनी हथेलियों को देखता।

और देखता चला जाता।

अब काको का समय पूरा होने वाला था। इस समय भी उसके हाथों में दाने थे। चेहरे पर वही स्मित मुस्कान। वह अपने अन्तिम सफर पर निकल पड़ा था।

उसे दफनाया गया।

80 सालों में पहली बार उसके कमरे की चमक गायब थी।

कई दशक बीत गए।

कौओं के इन्तज़ार से बचे कितने ही बीज अंकुरित हुए। जहाँ काको को दफनाया गया था वहाँ आज एक विशाल पेड़ है। वहाँ अनगिनत पक्षी आते हैं। पर उस पेड़ पर उनमें से कोई नहीं बैठता। जब शाम लौटती है और रात आती है तो असंख्य जुगनू उस पेड़ पर चले आते हैं। पूरा पेड़ चमक उठता है। जैसे, उजालों में साँसें भर रहा हो...

चित्रः तापोशी घोषाल

मेरे बेटे गाड़ी में बैठने लगे तो बड़े बेटे राहुल ने तुरन्त कहा, "मुझे बाईं तरफ वाली सीट चाहिए!" रोहित को यह ठीक नहीं लगा। उसने कहा वो भी बाईं तरफ ही बैठेगा। दोनों में झगड़ा हो गया। झगड़ा सुलझाने के लिए मैंने कहा, "राहुल बड़ा है। उसे बाईं तरफ बैठने दो।" राहुल पाँच साल का था। ये सुनते ही वह खुश हो गया और उसने पूछा, "बाईं तरफ कौन-सी है?"

जोश वेस्टन

चित्रः वसुन्धरा अरोरा

चला जा रहा बाघ

चन्दन यादव
चित्रः देबब्रत घोष

हवा चुप्प है कड़ी धूप है चला जा रहा बाघ
किसमें हिम्मत है जो पूछे, कहाँ जा रहा बाघ

लोग लालची काले धँधे बिछे ना हों रस्ते में फन्दे
राम करे के वहाँ खैर हो , जहाँ जा रहा बाघ

डाली डाली पंछी चीखें शोर करें लँगूर
बाघ के आगे खबर बाघ की जहाँ जा रहा बाघ

कौन इसे राजा कहता है तीन दिनों से भूखा है
कैसा राजा किसका राजा चला जा रहा बाघ